आनो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वत:
मानव जीवन की सर्वतोन्मुखी उन्नति, प्रगति और भारतीय गूढ़ विद्याओं से समन्वित मासिक पत्रिका

आत्म - प्रकाश

॥ ॐ परम तत्वाय नारायणाय गुरुभ्यो नमः ॥

सद्गुरुदेव

स्तम्भ

वर्ष 20 अंक 4
अप्रैल 2000 पृष्ठ 88

साधना

कुण्डलिनी

ज्योतिष

आवाहन

विशेष

विवेचन

दीक्षा

अन्य

रिपोर्ताज

प्रकाशक एवं स्वामित्व
श्री कैलाश चन्द्र श्रीमाली
द्वारा
नीरू आर्ट प्रिन्टर्स
10/2, DLF, इंडस्ट्रियल एरिया, मोती नगर, नई दिल्ली से मुद्रित तथा
मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान
हाईकोर्ट कॉलोनी, जोधपुर से प्रकाशित।

मूल्य (भारत में)
एक प्रति : 18/-
वार्षिक : 195/-

सम्पर्क
सिद्धाश्रम, 306 कोहाट एन्क्लेव, पीतमपुरा, दिल्ली-110034, फोन 011-7182248, टेली फैक्स 011-7196700
मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान, डॉ. श्रीमाली मार्ग, हाईकोर्ट कॉलोनी, जोधपुर-342001 (राज.), फोन 0291-432209, टेलीफैक्स 0291-432010
WWW address - http:/www.siddhashram.org E-mail add. mtyv@siddhashram.org

नियम

पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं का अधिकार पत्रिका का है। इस 'मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान' पत्रिका में प्रकाशित लेखों से सम्पादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। तर्क-कुतर्क करने वाले पाठक पत्रिका में प्रकाशित पूरी सामग्री को गल्प समझें। किसी नाम, स्थान या घटना का किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है, यदि कोई घटना, नाम या तथ्य मिल जाय, तो उसे संयोग समझें। पत्रिका के लेखक घुमक्कड़ साधु-संत होते हैं, अतः उनके पते के बारे में कुछ भी अन्य जानकारी देना सम्भव नहीं होगा। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख या सामग्री के बारे में वाद-विवाद या तर्क मान्य नहीं होगा और न ही इसके लिए लेखक, प्रकाशक, मुद्रक या सम्पादक जिम्मेवार होंगे। किसी भी सम्पादक को किसी भी प्रकार का पारिश्रमिक नहीं दिया जाता। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद में जोधपुर न्यायालय ही मान्य होगा। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी सामग्री को साधक या पाठक कहीं से भी प्राप्त कर सकते हैं। पत्रिका कार्यालय से मंगवाने पर हम अपनी तरफ से प्रामाणिक और सही सामग्री अथवा यंत्र भेजते हैं, पर फिर भी उसके बारे में, असली या नकली के बारे में अथवा प्रभाव होने या न होने के बारे में हमारी जिम्मेवारी नहीं होगी। पाठक अपने विश्वास पर ही ऐसी सामग्री पत्रिका कार्यालय से मंगवायें। सामग्री के मूल्य पर तर्क या वाद-विवाद मान्य नहीं होगा। पत्रिका का वार्षिक शुल्क वर्तमान में १९५/- है, पर यदि किसी विशेष एवं अपरिहार्य कारणों से पत्रिका को त्रैमासिक या बंद करना पड़े, तो जितने भी अंक आपको प्राप्त हो चुके हैं, उसी में वार्षिक सदस्यता अथवा दो वर्ष, तीन वर्ष या पंचवर्षीय सदस्यता को पूर्ण समझें, इसमें किसी भी प्रकार की आपत्ति या आलोचना किसी भी रूप में स्वीकार नहीं होगी। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी साधना में सफलता-असफलता, हानि-लाभ की जिम्मेवारी साधक की स्वयं की होगी तथा साधक कोई भी ऐसी उपासना, जप या मंत्र प्रयोग न करें, जो नैतिक, सामाजिक एवं कानूनी नियमों के विपरीत हो। पत्रिका में प्रकाशित लेखों के लेखक योगी या संन्यासी लेखकों के विचार मात्र होते हैं, उन पर भाषा का आवरण पत्रिका के कर्मचारियों की तरफ से होता है। पाठकों की मांग पर इस अंक में पत्रिका के पिछले लेखों का भी ज्यों का त्यों समावेश किया गया है, जिससे कि नवीन पाठक लाभ उठा सकें। साधक या लेखक अपने प्रामाणिक अनुभवों के आधार पर जो मंत्र, तंत्र या यंत्र (भले ही वे शास्त्रीय व्याख्या के इतर हों) बताते हैं, वे ही दे देते हैं, अतः इस सम्बन्ध में आलोचना करना व्यर्थ है। आवरण पृष्ठ पर या अन्दर जो भी फोटो प्रकाशित होते हैं, इस सम्बन्ध में सारी जिम्मेवारी फोटो भेजने वाले फोटोग्राफर अथवा आर्टिस्ट की होगी। दीक्षा प्राप्त करने का तात्पर्य यह नहीं है, कि साधक उससे सम्बन्धित लाभ तुरन्त प्राप्त कर सके, यह तो धीमी और सतत प्रक्रिया है, अतः पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ ही दीक्षा प्राप्त करें। इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की कोई भी आपत्ति या आलोचना स्वीकार्य नहीं होगी। गुरुदेव या पत्रिका परिवार इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की जिम्मेवारी वहन नहीं करेगी।

प्रार्थना

वरेण्यं सौभाग्यं परम रमणीयं च निखिलं,
परमहंसं हंसं मृदुतर सुधारं परिलुमः।
स्वसत्त्वोत्कृष्टैः परम शिव भावैर्गुण मयैः,
समुद्दीपं सर्वं भवविभव भावैः जनिगुतैः॥

हे भगवत् पूज्यपाद गुरुदेव निखिल! आपने अपने उत्कृष्टतम, शिवस्वरूप विशिष्ट भावमय, अनेक गुण गौरव से मण्डित, संसार के समस्त ऐश्वर्यों से पूरित, शुद्ध जन्म और दिव्यतम कर्मों के द्वारा समस्त शिष्यों को सात्विक भावभूमि की स्थिति प्रदान की है।

हे निखिलेश्वर! आप सभी के प्रियतम हैं, सौभाग्यप्रद हैं तथा कोमलतम उदार भावों के प्रतीक हैं। हंस के समान स्वच्छ, परमहंस की स्थिति से उद्भावित हैं। आपको मेरा इस पावन जन्म महोत्सव के निमित्त बारम्बार नमन स्वीकार हो।

जो लिखे विधाता उसे कौन काटे

एक बार समर्थ गुरु रामदास एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। थोड़ी देर में उन्होंने देखा कि एक ज्योतिषी उनके पास आकर बैठ गया। कुछ समय बाद समर्थ गुरु रामदास ने एक युवक की कुण्डली बनाई और ज्योतिषी से कहा — "इसका फल देखकर बताएं।"

ज्योतिषी कुण्डली देखकर अवाक् रह गया, क्योंकि कुण्डली के अनुसार उस युवक की मृत्यु उसी दिन निश्चित थी। ज्योतिषी ने जातक की मृत्यु तत्काल अवश्यम्भावी होने का फलादेश किया।

थोड़ी देर बाद गुरु रामदास ने कुण्डली उलट कर रख दी। ठीक उसी समय एक नवयुवक घोड़े पर सवार होकर आया और आकर उसने समर्थ गुरु रामदास को दण्डवत् प्रणाम किया। समर्थ गुरु रामदास ने आशीर्वाद के रूप में एक मुट्ठी मिट्टी नवयुवक को दे दी। देखते ही देखते नवयुवक ने मिट्टी को अपने अंगवस्त्र में बांध लिया और वहां से चला गया। दो घण्टे बाद वह युवक खून से लथ-पथ होकर पुनः वापस आया। समर्थ गुरु रामदास ने वही कुण्डली सीधी कर दी और ज्योतिषी जो अब तक वहीं बैठा था, उससे कहा — "जरा इस कुण्डली को फिर देखिये तो"

ज्योतिषी कुण्डली देखते ही चौंक गया, आश्चर्य से भरकर बोला — *"महाराज! यह कुण्डली तो बदल गई है। वास्तव में आप समर्थ हैं, आप तो भाग्य का लिखा भी बदल देते हैं, मैं तो एक साधारण ज्योतिषी हूं।"*

जिस नवयुवक की कुण्डली इस प्रकार बदल गई थी, वह और कोई नहीं वीर मराठा छत्रपति शिवाजी थे, जिनके भाग्य को समर्थ गुरु ने अपनी शक्ति से बदल दिया था।

सद्गुरुदेव ने शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कई बार कहा है कि मैं तुम्हें अपनी प्राण ऊर्जा देकर, तुम्हारे माथे पर लिखी दुर्भाग्य की काली रेखाओं को मिटा रहा हूं, समाप्त कर रहा हूं और सौभाग्य की स्वर्णिम पंक्तियां अंकित कर रहा हूं, जिससे तुम जीवन में इतनी ऊंचाई पर उठ सको, कि संसार तुम्हें देख सके कि यह व्यक्ति कुछ अलग ही है। जो विधाता के लेखे को बदल सके, सद्गुरु तो वही हो सकता है।

वन्दनीय माताजी : ८ अप्रैल
पूज्य सद्गुरुदेव : २१ अप्रैल
जन्म
दिन
मुबारक
हो !

जन्म दिवस तो शिष्य के लिये अमृत प्राप्ति का पर्व होता है, इस दिन शिष्य गुरु को क्या भेंट करे, इसे पूज्यपाद सद्गुरुदेव ने जन्म दिवस के ही एक अवसर पर अपने झकझोर देने वाले प्रवचन में स्पष्ट किया है –

देह महोत्सवं परिपूर्ण चिन्त्यं, प्राणोत्वता पूर्ण मदैव चिन्त्यं।
आत्मं स्वरूपं परमैव रूपं, गुरुदेव तुभ्यं प्रणाम्यं नमामि।।

आज इस अमृत महोत्सव पर्व पर जन्म दिन तो एक बहाना है, क्योंकि जो पैदा होता है उसका जन्म तो होता ही है। मगर यह कोई गुरु का जन्म दिवस नहीं है, क्योंकि गुरु अपने आप में कोई सत्ता रहता ही नहीं है। गुरु तो अपने आप में बिखर कर के पूरे शिष्यों के बीच में समाहित हो जाता है और पूरे शिष्यों का समूह अपने आप में गुरु कहलाता है। गुरु अपने आप में कोई व्यक्ति नहीं बन सकता। इसलिये यदि आप ऐसा समझते हैं कि इस मंच पर बैठा हुआ व्यक्ति गुरु है, तो शायद यह गलत है, और यदि यह समझते हैं कि नारायण दत्त श्रीमाली मेरे गुरु हैं, तब भी गलत है। हकीकत में तो इस श्लोक का तात्पर्य ही यह है कि जन्म दिवस केवल गुरु का जन्म दिवस नहीं मनाया जाता है।

जब गुलाब का पुष्प खिलता है, विकसित होता है, तब उसमें सुगन्ध पैदा होती है, तब गुलाब का पुष्प अपने आप में उस सुगन्ध को समेटे हुए नहीं रखता। और अगर समेटे हुए है तो गुलाब का पुष्प बन ही नहीं सकता। वह कोई और पुष्प तो बन सकता है परन्तु गुलाब का पुष्प नहीं बन सकता। गुलाब को तो पुष्पों का अधिपति कहा गया है। और गुलाब का पुष्प है ही इसलिये कि उसने अपनी सुगन्ध को चारों तरफ बिखेरा है। और चारों तरफ बिखेरी हुई सुगन्ध के पूरे समूह को गुलाब का पुष्प कहते हैं। केवल पंखुड़ियों को गुलाब का पुष्प नहीं कहते।

और ठीक उसी प्रकार से गुरु तो केवल यह बैठा हुआ व्यक्तित्व नहीं है। आप सबके बीच में जो कुछ बिखर गया है – वह मेरा सारा जीवन का क्रम, मेरे सारे शरीर के रोम-रोम, मेरे सारे जीवन के क्षण, मेरे चिन्तन, मेरे विचार, मेरी धारणायें, मेरी विचार शक्ति और मेरी चिन्तन पद्धति और ये सब कुछ मिलकर के जो मेरे सामने समूह बैठा हुआ है – वह अपने आप में गुरु है। और यह गुरु जन्म दिवस आप सबका और एक प्रकार से शिष्य जन्म दिवस है, गुरु जन्म दिवस है। यह गुरु जन्म दिवस गुरु का जन्म दिन ही नहीं यह तो एक अमृतत्व पर्व दिवस है।

इस श्लोक का मूल भाव ही यही है कि गुरु उसको नहीं कहते जो बस एक सिंहासन पर बैठ जाये। गुरु सिंहासन पर बैठता ही नहीं है, गुरु के बैठने के लिये कोई चांदी का रथ या पुष्पों से सजी हुई कोई कार नहीं हो सकती, वह बैठने की जगह है ही नहीं। और यदि गुरु को वहां बिठाया जाता है, तो यह शिष्य का सबसे बड़ा अपमान है, गुरु का सबसे बड़ा अपमान है। यदि आप फूलों से सजाकर मंच पर गुरु को बिठाते हैं, तो यह गुरु के बैठने का स्थान नहीं है। गुरु के लिये सबसे अच्छा बैठने का स्थान शिष्य का हृदय होता है और आप मुझे अपने हृदय में बिठायें। मैं सोचता हूं मेरे लिये यह स्थान बहुत ज्यादा उपयुक्त है। उस स्थान पर मैं अपने आपको बहुत अधिक सुखमय अनुभव करता हूं। उस स्थान पर मैं अपने आपको बहुत अधिक गौरवान्वित अनुभव करता हूं। जिस क्षण भी आप मुझे उस स्थान से हटाने की प्रक्रिया करते हैं, जब भी अपने हृदय के स्थान से मुझे थोड़ा सा भी दूर फेंक देते हैं, तो मैं अत्यन्त व्याकुल हो उठता हूं। बहुत चित्त व्यथित हो उठता है, बहुत अपने आप में बेचैन हो उठता हूं कि क्या कारण है? ऐसे क्षण क्यों आ रहे हैं? और वे क्षण मेरे लिये सबसे ज्यादा दुःखदायी होते हैं।

मगर विश्वामित्र ने इस श्लोक में कहा है कि जीवन का कोई अर्थ, कोई मूल्य, कोई चिन्तन है ही नहीं, क्योंकि तुम जिसको जीवन कहते हो, वह देह है, जीवन नहीं है। तुम देह की अवस्था को प्राप्त करते हो, तुम जन्म लेते हो मां के गर्भ से और मृत्यु को प्राप्त होते हो। इसलिये तुम्हारी जो पूरी यात्रा है, वह

देह की यात्रा है, वह जीवन की यात्रा नहीं है। इसलिये देह की अवस्था से बीस साल, पच्चीस साल, पचास साल, साठ, सत्तर या अस्सी साल – जितनी भी तुम्हारी देह में क्षमता है, वह देहगत अवस्था चलती है और चलते–चलते एक क्षण ऐसा आता है जहां तुम श्मशान में जाकर सो जाते हो। ये सारी यात्रा तुम्हारी देहगत अवस्था है।

और देह अपने आप में प्राण नहीं है। क्योंकि मां पुत्र को पैदा जरूर करती है, परन्तु मां केवल देह को पैदा करती है, केवल शरीर को पैदा करती है, प्राणों को पैदा नहीं करती है। जब पुत्र पैदा होता है तो मृत्युतुल्य पैदा होता है, जीवन तुल्य पैदा नहीं होता। आपने पुत्र को पैदा होते हुए, उसको बाहर निकलते हुए देखा नहीं है। जब पुत्र पैदा होता है, सन्तान पैदा होती है, तो मां और पड़ोसी, नर्स और डॉक्टर और आस–पास के लोग बड़े गम्भीर और चिन्तित मुद्रा में खड़े रहते हैं। बालक ने जन्म ले लिया है और सभी बहुत व्याकुल, बहुत संत्रस्त, चिन्तित, बहुत परेशान कि एक सेकण्ड बीत गया है, दो सेकण्ड बीत गया है, बच्चे ने अभी तक सांस नहीं ली है, रोया नहीं है, प्राण आया नहीं है। दो तीन सेकण्ड और चार सेकण्ड बीतते हैं और ज्यों हि वह रोने लगता है – ताली बज जाती है, खुशी से ढोल बज जाते हैं, थालियां बजने लगती हैं, सब शान्त हो जाते हैं, कि बच्चा जी गया, बच्चा पैदा हो गया। मगर जब तक वह रोता नहीं है, जब तक वह उस प्राण को प्राप्त नहीं कर लेता है, जब तक उसमें चेतना नहीं आ जाती है तब तक देह होती है। इसलिये मां केवल देह को पैदा कर सकती है, प्राण नहीं डाल सकती।

विश्वामित्र ने कहा है कि मां के गर्भ में शरीर तो है, उसमें जीव तो है, प्राण नहीं! . . . वह जीव मां की बात को बहुत ध्यान से सुनता है, मां जो भी बोलती है, पुत्र गर्भ में उसे सुनता ही है, वह अपने पिता की आवाज को भी सुनता है। माता और पिता के बीच जो बात होती है वह बालक बिल्कुल गर्भ में सुनता रहता है। हर क्षण वह उन आवाजों से परिचित रहता है और ज्यों हि वह बालक गर्भ से बाहर निकलता है – वह मृत तो नहीं होता, होता तो जीवगत अवस्था में ही है, परन्तु वह जीव नश्वर होता है, समाप्तप्राय होता है – जीव है भी और नहीं भी। ऐसे जीव का कोई विशेष अर्थ नहीं है, कोई उसमें चेतना नहीं है, इसलिये फटी हुई आंखों से मां देखती रहती है, दादा देखता रहता है, नर्स भी आशंकित रहती है कि जियेगा कि नहीं जियेगा, सांस लेगा कि नहीं लेगा। क्योंकि शिशु के लिये सांस लेने की क्रिया बिल्कुल नई है। मां के गर्भ में उसको सांस लेने की क्रिया का ज्ञान नहीं था। मां सांस लेती थी तो वह सांस लेता था। मां बोलती थी तो वह बोल रहा था, मां जो कुछ सुनती थी, वह वही सुनता था। आप जो बोल रहे थे, वह गर्भ का बालक नहीं सुन रहा था। इसलिये उसको मां की आवाज परिचित लगती है। इसलिये उसको मां का चेहरा परिचित लगता है। जन्म होता है, तो बिल्कुल अचम्भे से वह देखता है, क्योंकि गर्भ में तो बिल्कुल अलग जीवन होता है, अलग दीवार होती है, बाहर तो सब अलग है, सांस लेने का तरीका नया है, सारा सिस्टम अलग है, बात सुनने का तरीका नया है, यहां की हर चीज नई है, लोग नये हैं – और यह सब देखकर वह रोने लगता है, बिलख उठता है। लोग खुश हो जाते हैं कि प्राण आ गये हैं।

यह प्राणगत अवस्था गुरु के माध्यम से प्राप्त होती है, मां के माध्यम से प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिये दोनों में अन्तर है। मां केवल जीव दे सकती है, जीवन दे सकती है, प्राण नहीं दे सकती। इसीलिये विश्वामित्र ने कहा यह पूरा जीवन देह की यात्रा है। इस पूरी यात्रा में देह गतिशील होती रहती है, आप चाहें या नहीं चाहें। आपके चलाने से देह नहीं चलती है। यदि आप सांस नहीं लेना चाहें तो यह आपके बस की बात नहीं है, सांस आपको लेनी ही है। पर सांस लेने की क्रिया का आपको ज्ञान है नहीं, क्योंकि आपको सांस लेने की क्रिया समझाई ही नहीं गई। मां ने जैसे सांस ली, वैसे आपने सांस ली, मां ने आपको कोई नया तरीका नहीं समझाया। जीवन लेने के बाद, प्राण आने के बाद जो क्रिया समझानी चाहिये, वह नहीं समझ पाये आप।

इसलिये विश्वामित्र ने कहा कि जो साठ साल की यात्रा है, सत्तर साल की अवधि है, उस पगडण्डी पर जिसपर कि तुम चल रहे हो, गतिशील हो रहे हो, वह देह की अवस्था है। देह की इस गतिशील अवस्था में किसी भी क्षण गुरु मिल सकते हैं। और गुरु को प्राणात्मा कहा गया है। वह जीव को प्राणगत अवस्था में बदल देता है, क्योंकि जीव तो अपने आप में नश्वर है, जीव तो पंचभूतों में मिल जायेगा। प्राण नहीं मिल सकते। इसलिये प्राण को अनादि, अनश्वर, अजन्मा और अगर्भा कहा गया है। प्राण गर्भ में पैदा नहीं हो सकता, गर्भ के बाहर प्राण पैदा होते हैं, इसलिये प्राण की मृत्यु नहीं होती, प्राण का जन्म नहीं होता। इसलिये श्लोक में कहा है कि तुम्हारी देह की यात्रा और प्राणों की यात्रा में अन्तर है। तुम्हारी देह की यात्रा तो मां के गर्भ से मृत्यु तक की यात्रा है। मगर तुम्हारी इस देहगत यात्रा का मुझसे कोई लेना–देना नहीं है, कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि मैंने इस पर्व को अमृत पर्व महोत्सव के रूप में मनाया है।

मैंने कहा है कि जीवन में जब भी तुम्हें कोई जीवन्त व्यक्तित्व मिल जाये, जिन्दा गुरु मिल जायें तो उन्हें पकड़ लेना। गुरु भी दो प्रकार के होते हैं – एक मरे हुए गुरु, एक जीवन्त गुरु। व्यक्ति भी दो प्रकार के होते हैं। अधिकतर व्यक्ति मरे हुए होते हैं, 98 प्रतिशत व्यक्ति मरे हुए हैं, कोई चेतना नहीं है, कोई धड़कन नहीं है। सांस तो ले रहे हैं, मगर प्राणगत अवस्था में नहीं हैं, उनमें कोई चैतन्यता नहीं है, उनमें किसी प्रकार की हलचल नहीं है, वे एक लाश की तरह अपने को ढोये चले जा रहे हैं। चिन्ता है, कष्ट हैं, बोझ है, परेशानी है, बाधाएं हैं, अड़चनें हैं, कमाने की चिन्ता है और धीरे–धीरे एक–एक कदम चलते हुए अंत में एक दिन श्मशान में जाकर के सो जाते हैं।

नित्य आपके सामने सैकड़ों लोग श्मशान की ओर जा रहे हैं, आप अकेले ही नहीं जा रहे हैं। और आप खुद भी उन लोगों को कंधों पर पहुंचाने जाते हैं। और जब श्मशान में जाते हैं, तो सोचते हैं कि जीवन कुछ नहीं है, जीवन नाशवान है, यह था बहुत भला आदमी, धनवान था पर कुछ साथ नहीं ले गया। और वापिस लौटकर दुकान आते हैं, तो वही चिन्तन, वही पुराना कार्यकलाप शुरू हो जाता है। कुछ क्षण के लिये प्राण जाग्रत होते हैं, तब यह सोचते हैं कि यह जीवन है नहीं, यह जीवन बेमानी है, क्योंकि अंत में यहीं आकर श्मशान में सो जाना है। मगर वहां से वापिस लौटकर पुनः देहगत अवस्था में चले जाते हैं।

इसलिये विश्वामित्र ने कहा कि यह शिष्य का सौभाग्य है कि उसको अपने जीवन की पगडण्डी पर कभी भी, किसी भी क्षण गुरु मिल जायें। हो सकता है कि पैंतालिस साल की अवस्था में मिल जायें! हो सकता है कि पचास साल की अवस्था में मिल जायें! हो सकता है कि पूरे जीवन भर नहीं भी मिल पायें।

तुम चल रहे हो जीवन की पगडण्डी पर, तुमने जीवन के पैंतीस साल पार किये और पैंतीस साल बाद भी जहां गुरु मिले और तुमने पांव पकड़ लिये और हाथ पकड़ लिये, तब तुम उनके साथ चल सके। और यह चलने की क्रिया, गुरु को पकड़ कर चलने की क्रिया ही अपने आप में अमृत पथ पर चलने की क्रिया है। और मैं तुम्हारे प्राणों को पकड़कर के अमृतत्व की ओर ले जाने की क्रिया सम्पन्न कर रहा हूं, इसलिये इसे अमृत पर्व कहा है।

तुम पिछले कई साल से मेरे साथ देहगत अवस्था में रहे हो, मेरे साथ हंसते हो, मुस्कराते हो, रोते हो, बिलखते हो, परेशान होते हो, मगर तुम्हारा मेरा सम्बन्ध पांच या दस साल का नहीं है। ऐसा हो भी नहीं सकता। मुर्दा गुरुओं के ऐसे सम्बन्ध होते हैं। मुर्दा गुरु कुछ क्षणों के लिये जिन्दा होते हैं, कुछ क्षणों के लिये आपसे मिलते हैं, कुछ क्षणों में फिर बिछुड़ जाते हैं। उनका मिलना और बिछुड़ जाना कोई महत्व नहीं रखता। उसका महत्व बस इतना है कि जैसे पड़ोसी के यहां कोई मर गया, हमने उसे कन्धा देकर उठाया और श्मशान में जाकर सुला दिया। इसके अलावा हमारा उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, न हमारी आंख में आंसू हैं, न किसी प्रकार का विषाद है, न किसी प्रकार का अभाव है। और यदि पड़ोसी के घर में पुत्र पैदा हो गया, तो एक क्षण के लिये मुस्करा लिये, इतना ही जीवन का चिन्तन है। मुर्दा गुरु का भी आपसे इतना ही सम्बन्ध है। आप किस अवस्था में हैं, किस हालात में हैं, उन गुरु से कोई लेना-देना नहीं है। वो गुरु हैं ही नहीं। उन्होंने केवल एक दुकान खोल रखी है, एक व्यापार है, एक विनिमय है, एक साधन है। उनका तुम्हारा कोई प्राणों का सम्बन्ध नहीं है। जीवन का कोई चिन्तन या विचारधारा नहीं है। तुमसे तो उनका ये स्वार्थ जरूर है कि ये आवें और पांच रुपये मुझे चढ़ा दें, सौ रुपये चढ़ा दें, कमरा बना दें, हाल बना दें, धर्मशाला बना दें, कुछ दान-दक्षिणा दे दें। वे गुरु अपने आप में मुर्दा गुरु होते हैं।

ऐसे मुर्दा गुरु केवल भारत वर्ष में ही नहीं पूरे संसार में होते आए हैं और हैं। ऐसा नहीं कि कलियुग में ही ऐसे गुरु हैं, द्वापर युग में भी ऐसे सैकड़ों मुर्दा गुरु थे, त्रेता युग में भी थे, जिनको कि खुद के बारे में भी चिन्तन नहीं था, ज्ञान नहीं था।

विश्वामित्र ने यही बात कही कि वह तो गुरु हो नहीं सकता, जो शिष्य को पकड़ नहीं सके। शिष्य गुरु को नहीं पकड़ सकता, शिष्य को तो ज्ञान ही नहीं है कि मुझे क्या और किस क्षण गुरु से मिलना है। और ज्ञान ही होता तो फिर वह शिष्य रहता ही क्यों? शिष्य का तात्पर्य कोई चेला बनना नहीं है, मैं तुम्हें दीक्षा दूं यह शिष्यता नहीं है, दीक्षा लेने से शिष्य नहीं हो जाता।

शिष्य का मतलब है कि तुम गुरु के कितने निकट हो। शिष्य का अर्थ है निकट जाने की क्रिया। और निकट जाने की क्रिया देह से देह मिल जाने की क्रिया को नहीं प्राण से प्राण मिल जाने की क्रिया को कहते हैं। तुम्हारे प्राण गुरु के प्राण से मिल जायें, एकाकार हो जायें, एक धड़कन हो, एक चेतना हो, एक विचार पद्धति हो, एक क्रिया हो, एक चिन्तन हो, एक सांस हो। और ऐसा क्षण जीवन में शिष्य लाता है, अगर शिष्य में चेतना रहती है तो। मगर शिष्य में चेतना रह नहीं सकती, क्योंकि शिष्य प्राणगत अवस्था में पैदा होता नहीं है। शिष्य जीवगत अवस्था में पैदा होता है और किसी क्षण विशेष में उसे गुरु मिलते हैं, मिलते हैं और वह शायद नहीं भी पहिचान सके। मैं एक रास्ते पर चला जा रहा हूं, बीच में पचीस लोग मिल रहे हैं, मैं किसी की तरफ देख ही नहीं रहा हूं, तो चला जाता हूं और घर जाकर सो जाता हूं।

अधिकांश व्यक्ति भी ऐसे ही हैं, पैदा हो गये हैं, चल रहे हैं, यात्रा पूरी होगी और श्मशान में जाकर सो जायेंगे। फिर कोई गर्भ मिलेगा, उसके हाथ में कोई चिन्तन नहीं है, उसके हाथ में नहीं है कि वह फिर कहां जन्म लेगा। तुम्हारे हाथ में यह निश्चित नहीं था कि तुम किशनलाल के यहां पैदा होगे। यह संयोग है कि तुमने किशनलाल के यहां जन्म ले लिया, ये संयोग था कि तुमने शूद्र के यहां जन्म ले लिया, तुमने क्षत्रिय के यहां जन्म ले लिया, ब्राह्मण के यहां या किसी अन्य व्यक्ति के यहां जन्म ले लिया। तुम्हारे हाथ में सत्ता नहीं थी, क्योंकि तुम्हारे हाथ में गुरु नहीं था। गुरु तुम्हें इस बात का ज्ञान दे सकता था कि तुम्हारा जन्म लेने का अधिकार तुम्हारा है, ईश्वर का नहीं है।

ईश्वर तो कोई सत्ता ही नहीं। ईश्वर कोई दूसरी चीज है ही नहीं। ईश्वर तो गुरु है, गुरु को खुद ही 'गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णुः, गुरु देवो महेश्वरः' कहा गया है और जब हम वेद पढ़ते हैं, तो यजुर्वेद में कहा है कि ईश्वर अपने आप में कोई सत्ता है ही नहीं। ईश्वर का कोई जन्म नहीं होता। ईश्वर का कोई चिन्तन नहीं, उसका कोई आकार नहीं, उसका कोई रूप नहीं, उसका कोई रंग नहीं, कोई दिशा नहीं, कोई दृष्टि नहीं, कोई आंख नहीं। जब कुछ है ही नहीं तो हम किस को पकड़ेंगे? ..... और जिसको तुम पकड़ रहे हो, वह देवता है, ईश्वर तो है नहीं। जिनको तुम देवता मानते हो, तो सन 1947 से पहले भारत वर्ष में तैंतीस करोड़ देवी देवता थे, आज अरब से ऊपर देवी-देवता हो गये हैं। देवी-देवता तो बढ़ते जा रहे हैं। तब तैंतीस करोड़ थे, फिर चालीस हुए, पैंतालिस हुए, और अभी जब जनगणना हुई तो एक अरब देवी-देवता हो गये हैं। देवी-देवता की वृद्धि तो हो रही है, लेकिन ईश्वर में वृद्धि नहीं हो सकती। तुम ईश्वर को पहिचान भी नहीं सकते। इसलिये तुमने देवताओं का वर्णन किया है, उन्हें तुम देख सकते हो। और देवता का तात्पर्य है कि तुम स्वयं ही देवता हो।

'दान ता' – जो यात्रा में जड़ा मिल जाए, और जो प्राप्त कर ले उसको देवता कहते हैं। 'ददाति त्वां त्वां देवताः' – तुम्हारी यात्रा में, तुम्हारे जीवन की यात्रा में कोई मिल जाये, ऐसा मिल जाये जो तुम्हें कुछ दे सके। बाकी सब तुमसे लेने की इच्छा रखेंगे, पति तुमसे लेने की इच्छा रखेगा, पत्नी तुमसे कुछ प्राप्त करने की इच्छा रखेगी, बेटा भी लेना चाहेगा, मां-बाप भी कुछ इच्छा रखेंगे, भाई भी तुमसे कुछ लेने की कामना करेगा।

परन्तु गुरु तुमसे कुछ कामना नहीं करेगा और यदि गुरु कामना करता है, तो फिर गुरु है ही नहीं। गुरु शिष्य से कुछ ले ही नहीं सकता, क्योंकि शिष्य के पास कुछ है ही नहीं। शिष्य तो बिल्कुल खाली है और यदि शिष्य के पास कुछ है, तो विश्वामित्र कह रहे हैं, कि गुरु की ड्यूटी है, धर्म है कि सबसे पहले वह शिष्य को मृत्यु सिखा दे। जो कुछ तुम्हारे पास अब तक था, वह अपने आप में मृत्यु को प्राप्त हो जाये – तुम्हारा अहं, तुम्हारा छल, तुम्हारा झूठ, तुम्हारा क्रोध, तुम्हारा असत्य, तुम्हारा व्यभिचार, तुम्हारी न्यूनताएं, तुम्हारा प्रतिस्थापन, तुम्हारा जो कुछ भी है वह सब मृत्यु को प्राप्त हो जाये।

पहली बार मैं तुम्हें उंगली पकड़ कर उस रास्ते पर ले जा रहा हूं, जिस रास्ते को अमृत का रास्ता कहा गया है। 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' – इसलिये गुरु जन्म दिवस पर तुम्हारा एक नवीन पगडण्डी पर चलने का भाव होना चाहिये, जो अमृत का रास्ता है, इसलिये इसको अमृत पर्व कह रहा हूं। इसलिये इस पर्व पर मैं तुम्हें इन दर्शनों में उलझाना चाहता, मैं तुम्हें द्वैत और अद्वैत की अवस्था में भी नहीं ले जाना चाहता – यह एक उच्च कोटि के योगियों और संतों की परिभाषायें हैं। उन परिभाषाओं में उलझने से हमारा जीवन चल नहीं सकता। हमारे जीवन का आधे से ज्यादा अंश पार हो गया है और थोड़ा सा अंश रह गया है। और इस अवस्था में आकर के गुरु मिले हैं, एक मोड़ पर। आज गुरु मिले हैं, और अभी तक तो हमने यही समझा था कि जो शरीर है – वह गुरु है। अभी तक तो समझा था कि उस गुरु को पकड़ें और मिलें। मगर आज पहली बार एहसास कर रहे हैं, कि इस मोड़ पर गुरु के साथ चलने की क्रिया है।

और इसलिये यह अमृत पर्व मनाने के पीछे तात्पर्य कोई मेरा व्यक्तिगत जन्म दिवस मनाने का नहीं है। मुझे कोई इस बात की विशेषता है भी नहीं कि मेरा जन्म दिवस कोई बहुत महत्व रखता हो, ऐसा कोई चिन्तन भी नहीं है। मेरा जीवन अपने आप में महत्वपूर्ण है, मेरे प्राण महत्वपूर्ण हैं, मेरी जिन्दगी की धड़कन बहुत महत्वपूर्ण है, मेरे शिष्य महत्वपूर्ण हैं, और मैं शिष्यों के हृदय में बैठा हुआ हूं, यह बहुत महत्वपूर्ण है। जन्म दिन महत्वपूर्ण नहीं है।

और यदि महत्वपूर्ण है भी तो इसलिये, कि मुझमें ताकत है, मुझमें क्षमता है, मुझमें चैतन्यता है, क्योंकि मैं जिन्दा गुरु हूं, मैं मृत गुरु नहीं हूं। मुझमें प्राण है, चेतना है, मैं इस बात को समझता हूं कि मैं तुम्हारे प्राणों में जा सकता हूं, मैं तुम्हारे प्राणों में बैठ सकता हूं। बैठने की क्रिया का मुझमें ज्ञान है, तुम मुझे भुला नहीं सकते, तुम अपने प्राणों से मुझे हटा नहीं सकते, तुममें वह ताकत, वह क्षमता है ही नहीं।

इसलिये मैं तुम्हें कह रहा हूं कि जीवन दो चार सन्तान पैदा करने के लिये नहीं है। जीवन दस, पांच, पचीस हजार रुपये इकट्ठा करने के लिये भी नहीं है। वह तो देह की एक अवस्था है, यह तुम कर सकते हो और तुमने किया है और तुम करोगे भी। मगर यह जीवन का कोई बहुत बड़ा आनन्दमय पर्व नहीं है। वह सुखमय पर्व तो हो सकता है, उससे हो सकता है कि तुम चार-छः कपड़े पहन लो, उससे हो सकता है कि तुम दो-चार गहने बनवा लो, उससे हो सकता है कि तुम्हारी पत्नी तुमसे थोड़ी खुश हो जाये, मगर उस सुख के अन्दर आनन्द की अनुभूतियां नहीं हो सकती।

इसलिये प्राणगत अवस्था का तात्पर्य है कि पिछले कई कई जन्मों से तुम्हारा मेरा सम्बन्ध है। कोई पहली बार तुम्हारा मेरा मिलन नहीं हुआ है। पहली बार अगर मिलन हुआ होता, तो मैं तुम्हारे हृदय में बैठ भी नहीं सकता, तुम अपने हृदय में मुझे स्थापित कर भी नहीं सकते हो। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध तो प्राणों से ही हो सकता है। शिष्य का तात्पर्य है कि गुरु के निकट जाये। शिष्य का तो अर्थ है कि गुरु के पास जाये और गुरु के समीप बैठे। बैठे और कुछ करे नहीं, कुछ करने की जरूरत भी नहीं है। वह केवल पास में बैठे, यह केवल बैठना भी अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। यही तो उपनिषद का अर्थ है। उपनिषद का तात्पर्य कोई पोथी लिखे ग्रंथ नहीं है, उपनिषद का तात्पर्य है – गुरु के और भी अधिक निकट जाकर बैठने की क्रिया, शिष्य से भी आगे। यह बैठने की क्रिया भी अपने आप में कोई सामान्य क्रिया नहीं है, और यदि समुद्र के पास बैठेंगे, तो अपने आप लहर उठेगी और तुम्हारे चरण धो लेगी परन्तु समुद्र के पास बैठने की क्रिया होनी चाहिये तुममें। और तुम समुद्र के पास बैठोगे नहीं तो लहर उठेगी नहीं। तुम उस महान जलधि के पास बैठे हो, जिस जलधि की लहर उठ कर तुम्हारे भी चरण प्रक्षालन कर सकती है। जीवन के इस समुद्र के एक छोर पर गुरु खड़ा है, तो एक छोर पर शिष्य खड़ा है। शिष्य खड़ा है देहगत अवस्था में, और गुरु खड़ा है प्राणगत अवस्था में।

जिन्दगी मैं भी तुम्हारी तरह ही व्यतीत करता हूं, मेरे जीवन जीने का कोई नया स्टाइल नहीं है, मेरे भी पुत्र हैं, पत्नी है, मेरे भी बन्धु हैं, मेरे भी बान्धव हैं, चाचा है, काका है, भाई है, कमाता मैं भी हूं, रोटी मैं भी खाता हूं, रात को नींद मैं भी लेता हूं – ये सब कुछ तो है, पर तुममें और मुझमें अन्तर इतना है कि तुम चिन्ताओं से बोझिल हो जाते हो और चिन्ताएं मुझ पर हावी नहीं हो पाती हैं। चिन्ता मुझे तकलीफ नहीं दे सकती। परेशानी, बाधाएं आती हैं, तो पास में आकर खड़ी हो जाती हैं। वे मेरा गला नहीं पकड़ सकती, हावी नहीं हो सकती, मुझे झकझोर नहीं सकती, यह बहुत बड़ा अन्तर है।

इसलिये मैं एक किनारे पर खड़ा हूं और तुम दूसरे किनारे पर खड़े हो। तुम्हारे पर बाधा आती है, तो तुम भयभीत हो जाते हो, घबरा जाते हो, विचलित हो जाते हो कि क्या होगा? अब क्या होगा? यह बीमार हो गया, अब हालत और खराब हो जायेगी, अब कैसे होगा? बहुत मुश्किल हो जायेगी और कल बुड्ढा हो जाऊंगा और बेटा सेवा नहीं करेगा तो कैसे होगा? और अगर पत्नी बीमार पड़ गई तो क्या होगा? और पति मर गया तो क्या होगा?

तुम किनारे पर खड़े हो और मैं भी समुद्र के एक किनारे पर खड़ा हूं और आज मैं तुम्हें निमंत्रण दे रहा हूं कि किनारे पर खड़े रहने से कुछ लाभ नहीं हो पायेगा। मैं तुम्हें कह रहा हूं कि इस समुद्र में कूदना पड़ेगा तुम्हें, कूदोगे नहीं तो तुम जहां जा रहे हो वह तो श्मशान का रास्ता है। और इससे पहले भी मैं तुमको कह चुका हूं, पिछले जीवन में भी कह चुका हूं, कोई पहली बार नहीं कह रहा हूं। यह अवस्था तुम्हारी पहली बार नहीं है। तुम तो बार-बार मरे हो, परन्तु मैं बार बार नहीं मरा हूं। – मैं हर क्षण तुम्हारे सामने

जिन्दा हूं। प्रत्येक क्षण जाग्रत हूं। और जाग्रत गुरु मिलना बहुत कठिन और असम्भव है।

सतयुग में ऋषिकाल में वशिष्ठ पैदा हुए, विश्वामित्र, अत्रि, कणाद, पुलस्त्य, गौतम, जमदग्नि, पाणिनी हुए और उसके बहुत बाद फिर कृष्ण पैदा हुए, पांच हजार वर्ष बाद। बीच में कोई व्यक्तित्व पैदा हुआ ही नहीं। पीढ़ियां बीत गईं, जाग्रत व्यक्तित्व हो यह जरूरी नहीं है और कृष्ण की आत्मा गई और फिर उसके पच्चीस सौ वर्ष बाद फिर एक जाग्रत व्यक्तित्व पैदा हुआ बुद्ध।

बुद्ध ने कहा कि ध्यान के माध्यम से भी जीवन को पकड़ा और पहिचाना जा सकता है, उन्होंने अपने शिष्य आनन्द से कहा – शिष्य! तू चिन्ता मत कर, मैं तेरे पास हूं, तू केवल अपना हाथ मुझे सौंप दे, तुझे कुछ करने की जरूरत नहीं है। तू कुछ कर भी नहीं सकता।

और मैं भी तुम्हें वही बात कह रहा हूं, क्योंकि तुम्हारी कई पीढ़ियां, तुम्हारे कई जीवन मेरी आंखों के सामने से गुजरे हैं। तुम्हारा शरीर कई बार मिटा है, फिर जन्म लिया है। कभी तुमने किसी घर में जन्म लिया है तो कभी किसी और घर में जन्म लिया है। तुम्हारे पिछले पचीस और सत्ताईस जन्मों का हिसाब–किताब मेरे पास है। और मैं तुममें से प्रत्येक को हिसाब–किताब दे सकता हूं। तुम जाकर चेक कर सकते हो, कन्फर्म कर सकते हो कि क्या मैं पिछले जीवन में यहां पैदा हुआ था? तुम्हारा फोटो लगा होगा। अभी तुम पैंतालीस साल के हो, तो पचास पहले जरूर कहीं न कहीं रहे ही होगे, मरे होगे, वापस फिर जन्म लिया और फिर पैंतालिस साल और बीत गये हैं। इसका मतलब हुआ कि आज से पचास साल पहले और उससे भी दस साल पहले जरूर तुम कहीं न कहीं साठ या सत्तर साल के बुड्ढे रहे होगे। वह बुड्ढा मरा, फिर तुमने गर्भ चुना, और गर्भ को चुनने में तुम्हारी कोई ताकत नहीं है, क्योंकि तुम प्राणवान थे ही नहीं। जो गर्भ मिल गया, तुमने जन्म ले लिया।

मगर मैं कह रहा हूं कि तुम जाकर अपना पिछला जीवन चेक कर सकते हो, देख सकते हो, जरूर तुम्हारा कोई फोटो शायद टंगा भी होगा। तुम्हारे बेटे पचासी साल के हो रहे होंगे और तुम्हारे फोटो पर एक माला लटकाई हुई होगी, कि हमारे पिताजी थे, बहुत अच्छे थे, हार्ट अटैक हुआ था और खत्म हो गये। उन्होंने कुछ किया नहीं जीवन में। और यही मैं कह रहा हूं कि पिछले पचीस जन्मों से तुम कुछ कर नहीं पाये हो। और आज फिर हम उसी मानसरोवर के किनारे पर आकर खड़े हैं। तुम भी खड़े हो, मैं भी खड़ा हूं। फिर मैं वही आवाज दे रहा हूं। मैं आवाज दे रहा हूं कि अगर तुम किनारे पर खड़े रहोगे और अगर तुम कुछ बटोरोगे भी तो बटोरने से तो कुछ सीपियां ही मिलेंगी, कुछ घोंघे मिलेंगे, कुछ शंख मिलेंगे, बालू के कण मिलेंगे। इसमें तुम्हें और कुछ नहीं मिलेगा।

तुम्हें कुछ लेना है, तो कूदना पड़ेगा समुद्र में, बीच मझधार में, और अगर कूद जाओगे तो तुम मोतियों से हाथ भर कर बाहर निकलोगे। और कूदने के लिये मैं कोई तुम्हें अकेले धक्का नहीं दे रहा हूं। मैं खुद तुम्हारे साथ डुबकी लगाने के लिये तैयार हूं। तुम्हें इस समुद्र में अकेला नहीं धकेल रहा हूं। अकेले धकेलना मेरा धर्म भी नहीं है, कर्तव्य भी नहीं है। बीच मझधार में तुम्हारा हाथ छोड़ना मेरा धर्म नहीं है, मेरा कर्तव्य नहीं है। बार बार तुमसे कहना इसके पीछे मेरा अर्थ यही है क्योंकि बहुत समय व्यतीत हो चुका है। ये बार बार के वायदे उचित नहीं हैं।

अब तक तो मैंने तुम्हें देहगत साधनाएं करवाई, देवताओं को प्रसन्न करने के लिये साधनाएं करवाई, लक्ष्मी की साधना करवाई, हनुमान जी को प्रसन्न करने की साधना करवाई, इसकी साधना करवाई, उसकी साधना करवाई, देहगत अवस्था में सम्बन्ध रखा। पहली बार मैं तुम्हें मैं तुम्हें अमृतत्व की ओर लेकर आ रहा हूं। पहली बार तुम्हें कह रहा हूं, कि ये जीवन तुम्हारा बहुत आवश्यक है, तुम्हारा यहां आना आवश्यक है, क्योंकि तुम्हारा ये आना उस समुद्र के किनारे खड़ा होना है जहां तुम मेरा हाथ पकड़ कर खड़े हो। अभी तक तो एक किनारे पर तुम खड़े थे और एक किनारे पर मैं खड़ा था। और इसी में पचीस जन्म बीत गये, चालीस जन्म बीत गये, पन्द्रह जन्म बीत गये। हर बार तुम मुझे मिले, हर बार मैंने तुम्हें आवाज दी, हर बार मैंने तुमसे कहा कि किनारे खड़े रहने से तुम्हें कुछ मिलेगा भी नहीं। और तुम्हें कुछ मिला भी नहीं।

तुम्हारा शरीर ताकतवान, क्षमतावान है ही नहीं। अगर तुम्हें शरीर पर नाज है तो तुम तीन दिन स्नान नहीं करोगे तो चौथे दिन से बदबू आने लग जायेगी। इसमें से सुगन्ध निकलने की बात तो बहुत दूर की है, इसमें तुम चार दिन साबुन नहीं लगाकर नहाओगे तो चार दिन बाद कोई तुम्हारे पास खड़ा भी नहीं रह पायेगा, इतनी बदबू आयेगी तुम्हारे शरीर से। मरे आदमी क्या, जिन्दा आदमी के पास भी नहीं खड़ा हो सकता, जिन्दे आदमी की चमड़ी भी इतनी बदबूदार हो जाती है। तुम्हारे शरीर में कुछ है ही नहीं, कोई धड़कन नहीं है, कोई चेतना नहीं है।

इसलिये मैं कह रहा हूं कि तुम अपने मुर्दा शरीर को अपने कन्धों पर ढोते हुए चले जा रहे हो। और जा रहे हो, तो मैं फिर बीच में आकर खड़ा हूं। पिछले बार भी खड़ा हुआ था। मैंने पहले भी कहा है कि जरूर किसी न किसी जन्म में तुमसे वायदा किया था, वायदा किया था कि तुम्हें ब्रह्मत्व तक ले जाऊंगा और फिर मैं वायदा करता हूं कि मैं तुम्हें ले जाऊंगा। मैं जानता हूं कि तुम हाथ छुड़ाने की कोशिश कर सकते हो, मैं जानता हूं कि तुम यहां से वापस घर जाओगे और अपने को बदल दोगे, मैं फिर तुम्हें समझाऊंगा, फिर चेतना आयेगी, याद आयेगा कि गुरुजी ने कहा तो था, कि इससे फायदा तो कुछ है नहीं, जीवन का चिन्तन यह नहीं है।

मगर उसके बाद फिर तुम उसी में भ्रमित हो जाओगे। और ऐसा कई बार हो चुका है। कोई यह पहली बार नहीं है। तुम्हारे–मेरे बीच में लुका–छिपी के खेल कई बार हो चुके हैं। मैं फिर तुम्हारे प्राणों में दस्तक दे रहा हूं, मैं फिर मेघों की तरह बोल रहा हूं, फिर आवाज दे रहा हूं, धड़कन दे रहा हूं, चेतना दे रहा हूं, कि अब समय बहुत कम बच गया है तुम्हारे जीवन का भी और मैं तो अपने जीवन को जानता ही हूं। मेरे लिये तो काल का प्रत्येक क्षण स्पष्ट है, सार्थक है। मुझे

मालूम है कि आज से दो दिन बाद क्या होगा, दो क्षण बाद क्या होगा। और मुझे
ये भी मालूम है कि तुम्हारे जीवन का क्या होने वाला है। इसलिये मैं तुम्हें हिम्मत दे
रहा हूं, जोश दे रहा हूं कि तुम्हें कूदना है, क्योंकि मैं कूद चुका हूं।
बीज मिट्टी में मिलता है तो छायादार पेड बनता है। ये जो इतना बड़ा नीम का
पेड है, आज से तीन साल पहले बहुत छोटी सी टहनी थी, और साढ़े तीन साल पहले छोटा
सा बीज था, जो जमीन के अन्दर मिला हुआ था। उस बीज का कोई अस्तित्व नहीं था।
वह बीज तो दिखाई भी नहीं दे रहा था। बाजरे के दाने या गेहूं के दाने से बड़ा नहीं था
वह बीज। मगर मैंने मिट्टी में मिलाया उसको। मुझे मालूम था कि बीज को मिट्टी में मिलाना
मुझे जरूरी है। और बीज को मिट्टी में मिलाया और आज चार साल बाद उस पेड के नीचे
सौ आदमी विश्राम कर सकते हैं। मैं खुद भी एक बीज था, मैं मिट्टी में मिला और मिट्टी
में बिलकुल अपने आप को समाप्त कर दिया। अपना कुछ अस्तित्व रखा नहीं।

मैंने संन्यास जीवन लिया तो मेरी भी पत्नी थी, पुत्र थे, बन्धु थे, मेरी मां थी, बाप
थे, भाई थे, सम्बन्धी थे, रिश्तेदार थे। मेरे भी जीवन में सुख था, यौवन था, मेरे भी जीवन
में सुख की कामनायें थीं, पत्नी थी, इच्छायें थीं, सबकुछ था, मगर एक बार निश्चित किया कि
इस बीज को या तो मैं मिट्टी में मिलाऊं और या फिर उनके बीच में बिखेर दूं। और उन
सबके बीच में बिखेर देता तो तुम्हारी तरह एक मामूली व्यक्ति बनकर रह जाता। मैं मिट्टी
में मिला तो आज मैं पेड बन सका हूं और तुम्हारे जैसे हजारों शिष्यों को अपनी छाया तले
विश्राम दे सकता हूं।

और मैं तुम्हें भी कह रहा हूं कि तुम्हें भी मिट्टी में मिलना पड़ेगा। अपने आप को
बचाकर रखने से तुम छायादार पेड नहीं बन सकते। झाड़ी बन सकते हो, लेकिन उस झाड़ी के
नीचे कोई विश्राम नहीं ले सकता। बहुत छोटे आक के पेड बन सकते हो, लेकिन उस आक के पेड
के नीचे तुम्हारा छोटा सा परिवार भी ठीक से नहीं बैठ सकता। तुम्हारी इतनी छोटी सी टहनी है
कि तुम्हारा बेटा भी आराम से सांस नहीं ले पा रहा है। तुम्हारी इतनी पतली छाया है कि तुम्हारी पत्नी
भी आराम से विश्राम नहीं ले पा रही है। उसे भरोसा नहीं है कि यह छाया मुझे पूरी मिलेगी भी या
नहीं मिलेगी। ऐसी छाया का कोई अर्थ भी नहीं है कि जहां तुम अपनी पत्नी को, पुत्रों को भी छाया
नहीं दे सको, और यह जो छाया अनुभव भी कर रहे हैं, वह एक कल्पना है। हजारों-लाखों लोगों को
छाया देना तो बहुत बड़ी बात है।

बर्नार्ड शॉ, एक बहुत बड़ा कवि हुआ है। अभी सौ साल पहले की घटना है, कोई हजार साल
पहले की घटना नहीं बता रहा हूं। बर्नार्ड शॉ ने अपनी सेक्रेटरी से कहा – "मैंने जिन्दगी में बहुत काम
किया, मुझे कई पुरस्कार-सम्मान मिले, मैंने बहुत कुछ देखा है। मगर मैं एक चीज देखना भूल गया"

सेक्रेटरी ने कहा – "क्या भूल गये! आपने इतने बड़े नाटक लिखे, उपन्यास लिखे, ग्रन्थ लिखे,
आपका बड़ा सम्मान हुआ, प्रसिद्धि हुई, अरबों रुपये आपके पास में हैं और धन, दौलत, पत्नी, पुत्र सब
कुछ आपके पास में है फिर देखना क्या है, पूरे संसार की यात्रा भी तो आप कर चुके हैं।"

बर्नार्ड शॉ ने कहा – "मैं अपनी डेथ (मृत्यु) देखना चाहता हूं। मैं मरना चाहता हूं।"

सेक्रेटरी ने कहा – "ये आप क्या कह रहे हैं, दिमाग तो दुरुस्त है आपका? मरना चाहते हैं!"

उन्होंने कहा – "बिल्कुल! तू अखबार में छाप दे कि 'बर्नार्ड शॉ डाइड'। मैं पांच दिन के लिये कहीं
चला जाना चाहता हूं और कमरे से बाहर निकलूंगा नहीं। और तू कह देना कि बर्नार्ड शॉ तालाब में डूब गया।"

सेक्रेटरी ने कहा – "ये होगा कैसे, कल मैं जेल चली जाऊंगी। आज मैं लिख दूंगी मर गये और पांच
दिन बाद आप पैदा हो जाओगे तो मुझे जेल हो जाएगी।

उसने कहा – "सेक्रेटरी, या तुम फिर मेरी हत्या ही कर दो नहीं तो फिर इसे अखबार में छपाओ। मैं
यह देखना चाहता हूं कि मेरी मृत्यु कैसे होती है। मृत्यु का क्या अर्थ होता है, क्या चिन्तन होता है।"

और दूसरे दिन अखबार में बड़े-बड़े अक्षरों में छप गया कि 'बर्नार्ड शॉ हैज डाइड' – वो तैरने के
लिये तालाब में गये और डूब गये, उनकी लाश का कुछ पता नहीं। लोगों के टेलीग्राम आने शुरू हुए, पत्र आने
शुरू हुए, पत्नी रोई, आंखों से आंसू टपके, घण्टे-दो घण्टे उदास रही, बेटा भी रोया। आखिर पांच घण्टे बाद
बर्नार्ड शॉ कमरे में से बैठा बैठा सब देखता रहा।

बेटे ने मां को कहा – "तू कब तक भूखी रहेगी, एक दो रोटी तो खा ले।"

उसने कहा – "तुम्हारे पिता चले गये, मैं अनाथ हो गई। कितना बड़ा नाम था उनका।"

बेटे ने कहा – "वो तो सही है, लेकिन रोटी तो खानी पड़ेगी।"

तो उसने कहा – "हां ये तो है! रोटी ले आ।"

माँ ने कहा – "तू भी खा ले बेटा।"

बेटे ने कहा – "पिताजी चले गये।"

माँ ने कहा – "अब मरने के पीछे तो कोई मर नहीं सकते अपन। चले गये, तो चले गये। वो गये, वो तो जाना ही था। आज नहीं तो दो साल बाद जाते। मगर तू चिन्ता मत कर, बहुत धन छोड़कर गये हैं, खाने–पीने का बहुत साधन है बेटा! अपना जीवन बहुत आराम से कट जायेगा बेटा!"

बर्नार्ड कमरे में बैठा सोचने लगा कि मेरे बारे में कोई चिन्तन ही नहीं है, ये चिन्तन है कि रोटी आये और खा लें। चिन्तन ये है कि बहुत धन पीछे छोड़कर गये हैं, चिन्ता की कोई बात नहीं है।

और मैं तुम्हें भी यही कहता हूं कि एक बार मर कर देख लो, बहुत आनन्द आयेगा। तुम्हें मालूम पड़ जायेगा कि जिसे तुम छाया समझ रहे हो, पत्नी और पुत्र समझ रहे हो, वे चार घण्टे बाद रोटी खाने लग जायेंगे। पत्नी चार घण्टे आंसू जरूर बहायेगी, चार घण्टे सिसकेगी जरूर भरेंगी, लेकिन दो महिने बाद वापिस राग हो जायेगा, मस्त हो जायेगी। और यह तो तुमने देखा है, कि तुम्हारे पिताजी की मृत्यु हुई है, चाचाजी की मृत्यु हुई है, सम्बन्धियों की मृत्यु हुई है, उस समय तुमने उनकी पत्नियों को, उनके पुत्रों को देखा है। पत्नी की मृत्यु हो जाती है, वापस साल भर बाद शादी कर लेते हैं, वापस सन्तान होने लगती है, वापस जीवन चलने लग जाता है। बेकार तुम समझ रहे हो कि तुम्हारी छाया बहुत सुखद है, शायद इससे ज्यादा मृगतृष्णा कुछ नहीं हो सकती। इससे ज्यादा न्यून चिन्तन कुछ नहीं है।

तब बर्नार्ड शॉ ने कहा कि मैंने जीवन में पहली बार सत्य को जाना और फिर उसने अपने जीवन का जो अन्तिम ग्रंथ लिखा, वह बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। उसमें उसने खुद कहा है – "मैंने आज तक जो कुछ लिखा है, उसे नदी में बहा दीजिये, थेम्स में बहा दीजिये, यूजलेस है। इसलिये कि बिना गुरु के मुझे जीवन में कोई रास्ता बताने वाला ही नहीं था। मुझे किसी ने बताया नहीं कि मरने का क्या अर्थ होता है। और मुझे किसी ने बताया नहीं कि मैं किस प्रकार से जिन्दा रह सकता हूं। और अब तो समय इतना कम रह गया है, कि अगर मैं चाहूं भी तो जिन्दा नहीं रह सकता हूं।"

और मैं भी तुम्हें बार–बार झकझोर कर यही कह रहा हूं कि तुम्हें समुद्र में कूदना है। तुम अगर कूदोगे नहीं तो तुम्हारे हाथ में कंकण–पत्थर के अलावा कुछ नहीं आ सकता। तुम्हारे पास छोटे कागज के टुकड़े जरूर मिल सकते हैं, पर वे तुम्हारे काम नहीं आ सकते। जो व्यक्ति कमाता है, वह उसका लाभ उठा ही नहीं सकता। यह संसार का नियम है। तुमने जो कुछ कमाया है, उसका लाभ तुम नहीं उठा सकते। तुमने पचीस हजार रुपये कमाये तो सही, पर गंगोत्री के किनारे जाकर कभी बैठ नहीं पाये। बैठ सकते ही नहीं तुम। अगर तुम जाना भी चाहोगे तो पत्नी पीछे से कहेगी – "तुम जाना चाहते हो मगर पीछे ये दुकान कौन चलायेगा? दुकान में बैठेगा कौन?"

तुम भी सोचोगे कि हां ये बात भी ठीक है। अगर दुकान पर नहीं बैठेंगे तो एक बार जो ग्राहक टूटा कि फिर हमेशा के लिये टूट जायेगा। ग्राहक टूट जायेगा, इसलिये दुकान में बैठना ज्यादा जरूरी है, गंगोत्री गई खड्डे में। और अगर तुम नौकरी करते हो और अफसर को कहते हो कि गंगोत्री जाना है, तो वह अफसर दो बार देखेगा कि यह कहां से आया है और कहेगा – 'आर यू मैड और ऑल राइट,
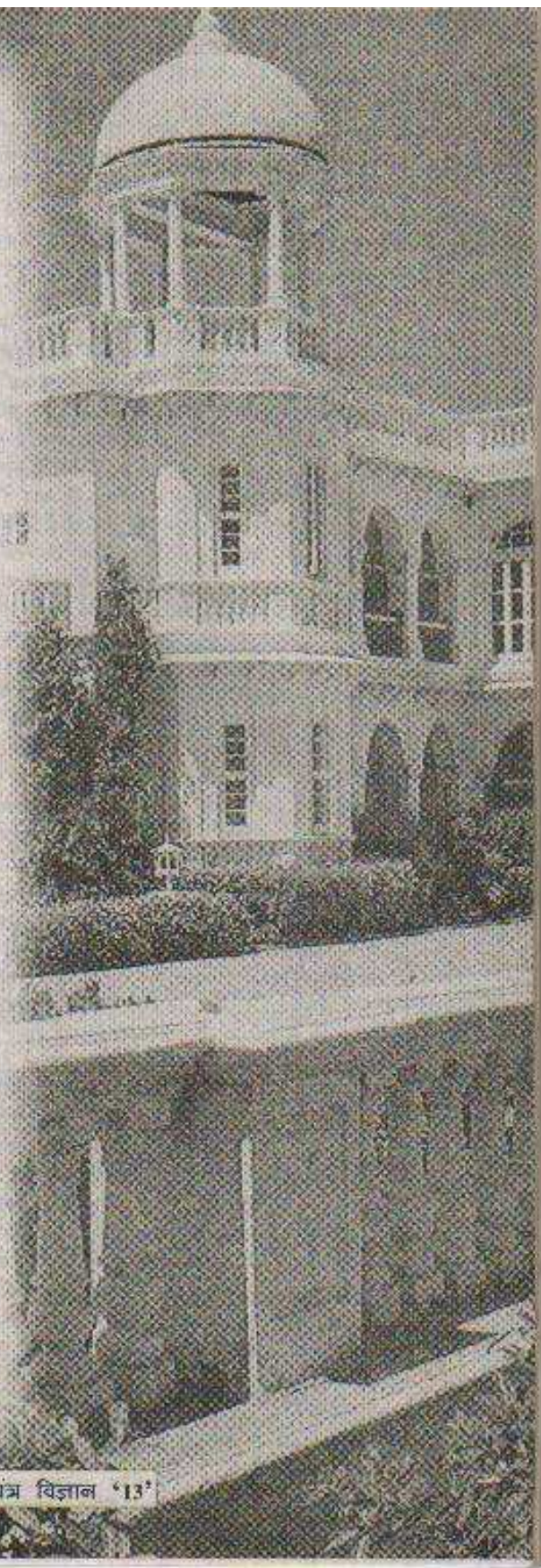
गंगोत्री भी कोई जाने की चीज है। दिमाग खराब है तुम्हारा, तनख्वाह कट जायेगी तुम्हारी। नहीं, तुम गंगोत्री नहीं जा सकते!

तो अगर तुमने अपनी जिन्दगी में कुछ कमाया है, तो उसका लाभ तुम नहीं उठा सकते। और तुमने जिसको पैदा किया है उसका लाभ भी तुम नहीं उठा सकते। सन्तान तुम्हें सुख नहीं दे सकती। क्योंकि तुमने वैसा ही पैदा किया जैसे कि तुम थे। तुम जीव थे, तुमने जीव को पैदा कर दिया। तुम्हारे पास प्राण थे नहीं, तुमने उसमें प्राण की धड़कन दी नहीं, चेतना दी नहीं।

इसलिये तुम समुद्र के किनारे खड़े-खड़े हिचकिचा रहे हो – कूदूं कि नहीं कूदूं, ये गुरुजी कह तो रहे हैं छलांग लगा दो। अब गुरुजी छलांग तो लगा दें, मगर ये पत्नी खड़ी है बिचारी, आप देखिये इसकी आंख में आंसू हैं गुरुजी, आप छलांग लगाने को कह रहे हैं! मगर मेरे बिना रह नहीं सकती ये गुरुजी। मैंने कहा वो रह जायेगी, चिन्ता मत कर, तू चला भी जायेगा तो चार-छः घण्टे के आंसू हैं, फिर अपने आप आंसू पोंछ-पांछ देगी, कपड़े बदल देगी। तू घबरा गया, मेरे साथ चल, तेरे साथ में भी छलांग लगा रहा हूं। ऐसा नहीं कि मैं धक्के दे रहा हूं। तुम कहते हो – नहीं गुरुजी! बस एक लड़की की शादी करनी है, लड़की की शादी हो जाये तो मैं छलांग लगा दूंगा गुरुजी। आप भरोसा रखो मेरे ऊपर गुरुजी, मेरे ऊपर भरोसा तो रखो।

...और भरोसा रखते-रखते तुम्हारे और मेरे बीच पचीस जन्म निकल गये। अब भरोसा नहीं रख सकता। तुम्हारे ऊपर से मेरा विश्वास उठ गया है। हर बार तुमने मुझे धोखा दिया है। हर बार मैंने तुम्हें कहा है कि तुम इस जनम-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाओ। ये बार-बार मां के गर्भ से जन्म लेना और तीन-चार साल मल-मूत्र में रहना, तुम बिल्कुल एक शूद्र की तरह मल और पिशाब में लिपटे जीवन व्यतीत करते हुए ग्यारह-बारह साल के होते हो और वापस उसी चक्कर में घूम जाते हो। फिर मर जाते हो, फिर जन्म ले लेते हो। और फिर मैं तुम्हें किसी मोड़ पर मिलता हूं। बार-बार तुम यों ही मुझसे हाथ छुड़ा लेते हो। फिर अगली बार तुम कहते हो – गुरुजी आप मुझपर भरोसा रखिये, मैं आपका शिष्य हूं, आप मेरे गुरु हैं, आप मेरे देवता हैं, आप मेरे प्राण हैं, गुर्रुब्रह्मा गुरुर्विष्णु! और फिर आंख बन्द कर 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' और 'गुरुदेव! अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में' गाने लग जाते हो।

मैं कहता हूं कि तुम ये क्या कर रहे हो?

तुम कहते हो – गुरुजी थोड़ा सा एक काम और रह गया है, दो चार महिने और लगेंगे।

अरे अभी तुम तो चिल्ला रहे थे कि सौंप दिया सब भार तुम्हारे हाथों में। 'सब सौंप दिया इस जीवन का सब भार' गा भी रहे हैं, नाच रहे हैं और फिर जब मैं कह रहा हूं कि तुम्हें चलना है। तो तुम कह रहे हो – ''गुरुजी चलना कहां है, अभी दो-दो लड़कियां कुंवारी बैठी हैं, उनकी शादी भी तो करनी है। वह तो शाम को कह दिया था कि 'सौंप दिया अब सौंप दिया'। अब ऐसे कोई सौंपा थोड़े ही जाता है गुरुजी। ये तो भजन में सब लोग गा रहे थे 'अब सौंप दिया' तो हमने भी गा लिया – 'अब सौंप दिया, अब सौंप दिया'। ऐसे सौंपा नहीं जाता गुरुजी!

पिछली बार भी इसी तरह मैं तुम्हारी बातों में आ गया था। मैं फिर कहता हूं कि तुम कर क्या रहे हो?

तुम कहते हो – ''गुरुजी! वो सब तो ठीक है, मगर आप खुद ही सोच लो गुरुजी। मैं क्या कर सकता हूं। मगर आप भरोसा रखो, बस दो-चार साल की और बात है। पांच साल बाद फिर कोई बात नहीं होगी गुरुजी।''

इसलिये अब तक तो मैं ये कहता रहा कि तुम अपना हाथ मुझे दे दो, परन्तु अब मैं पहली बार कह रहा हूं कि तुम्हें हाथ नहीं देना है मुझे, बहुत हो गया अब, अब मैं खुद तुम्हारा हाथ पकड़ूंगा। क्योंकि मैं अपना हाथ दूंगा तो फिर तुम हाथ छुड़ाकर किनारे हो लोगे और छुड़ा लेते हो। इसलिये हर बार ठगा मैं गया हूं, छला मैं गया हूं, तुम नहीं छले गये हो। हर बार धोखा मैंने खाया है, तुमने धोखा नहीं खाया है। हर बार मैंने तुम पर विश्वास किया है। मगर इस बार ऐसा सम्भव नहीं है। अब इस जीवन में ऐसा नहीं हो सकता। अब इस जीवन में मैं तुम्हें बार-बार जन्म-मरण नहीं देना चाहता। और मैं नहीं चाहता कि तुम श्मशान में जाकर सो जाओ। और मैं नहीं चाहता कि तुम आक के पेड़ बन जाओ।

और मैं ये भी कहता हूं कि तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि मैं तुम्हारे पास बैठा हुआ हूं। तुम्हें केवल आनन्द और मस्ती के साथ नाचते रहना है, तुम्हें जीवन को समझना है, तुम्हें दुःख और चिन्ता भुला देनी है। तुम्हारी चिन्तायें मैं अपने आप भोग लूंगा। तुम्हारी चिन्ताएं मुझपर हैं, तुम्हारे दुःख मुझपर हैं, मैंने अगर तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लिया है तो मेरी जिम्मेवारी है। अगर शादी होती है और पत्नी का हाथ पकड़ लेते हैं, तो पति की जिम्मेवारी है कि पत्नी को पूरे जीवन तक वो रोटी खिलाये, उसको कपड़े दे, उसके सुख-दुःख में शामिल हो।

इसीलिये मैं तुम्हारा हाथ पकड़ नहीं रहा था, मैं अपना हाथ दे रहा था। मगर फिर मैंने सोचा कि ऐसा चलेगा नहीं। जन्म दिवस पर्व रखने का मेरा चिन्तन यह नहीं था कि मैं तुमसे कोई बात चीत करूं। मेरा चिन्तन यह था कि मेरे-तुम्हारे बीच जो एग्रीमेण्ट होता है, हर बार जो समझौता होता है वह टूट जाता है। लेकिन मैं तुमसे वायदा कर चुका हूं और मैं वायदा तोड़ नहीं सकता। प्रभु के सामने मुझे खड़ा होना है। देहगत अवस्था में तुम्हें मैं रखना नहीं चाहता, प्राणों से सम्बन्ध स्थापित करना चाहता हूं। मैं तुम्हें दिखा देना चाहता हूं कि जीवन का आनन्द क्या है, जीवन की मस्ती क्या है? जीवन की चेतना क्या है? जीवन की धड़कन क्या है?

मैं तुम्हें परिचय कराना चाहता हूं प्राणों में उतरने की उस क्रिया का जिससे बुद्ध ने आनन्द प्राप्त किया, जिससे कृष्ण अर्जुन को ज्ञान दे सके, उसे कह सके कि तुम जो देख रहे हो, वह श्मशान है। तुम सोच रहे हो कि तुम भीष्म

रहे हो। भीष्म तो पहले से ही मरा हुआ है, उसे मैं पहले ही मार चुका हूं। तुम तो केवल निमित्त हो, मैं तुम्हें निमित्त बना रहा हूं। मैं तो तुम्हें बस कह रहा हूं कि तुम्हें युद्ध में कूदना है। तुम्हें और कुछ करना नहीं है, तीर तुम चला ही नहीं सकते, तुममें तीर चलाने की ताकत नहीं है। अगर मैं यहां नहीं बैठा होता तो तुम कुछ नहीं कर सकते। तुममें यह ताकत, यह क्षमता नहीं है।

और जब अर्जुन तीर चलाता तो कर्ण का रथ एक दम से पांच गज पीछे सरक जाता था। कर्ण भी बहुत बड़ा योद्धा था, बहुत बहादुर था, लेकिन फिर भी रथ पांच गज पीछे सरकता था, एक तीर से। और जब कर्ण बाण चलाता तो अर्जुन का रथ एक गज पीछे सरकता। अर्जुन गर्व से बहुत फूल कर बोला – "कृष्ण! मेरी बाणों की ताकत देखो। तुम कर्ण की बहुत तारीफ करते थे कि वह तीर चलाने में बहुत ताकतवान है। मैं जब तीर चलाता हूं तो उसका रथ पांच गज पीछे धकेल देता हूं। मगर उसके तीर से मेरा रथ केवल एक गज ही पीछे सरकता है।"

कृष्ण ने कहा – "मैं जो बैठा हुआ हूं जो तीनों लोकों का भार लेकर, इसलिये ये रथ एक गज ही सरकता है। इसलिये तुम्हारा रथ रुका हुआ है अर्जुन! नहीं तो तुम्हारा रथ कब का ध्वस्त हो गया होता। तुम कुछ नहीं कर रहे हो, लड़ तो मैं रहा हूं, तीर तो मैं चला रहा हूं, तुम तो निमित्त मात्र हो।"

मैं भी तुम्हें यही कह रहा हूं कि तुम्हें केवल नजदीक आना है। तुम्हें केवल शिष्य बनना है, तुम्हें केवल उपनिषद बनना है, तुम्हें वेद बनना है, तुम्हारे प्राणों की धड़कन और मेरे प्राणों की धड़कन एक बननी है। बस और कुछ नहीं करना है, तुम्हें कोई साधना नहीं करनी है, तुम्हें कोई माला–मंत्र जाप नहीं करना है, तुम्हें कोई चेतना नहीं करनी, तुम्हें कोई आरती नहीं उतारनी है, कुछ करने की जरूरत नहीं है, तुम केवल नाचो–गाओ और मुस्कुराओ। तुम्हारी सारी चिन्ताएं, सारा बोझ मैं लेने के लिये तैयार हूं, मैं ले रहा हूं। मगर तुम्हें मुस्कुराना है।

मैंने तुम्हें आवाज देकर बुलाया है, भीड़ को इकट्ठा नहीं किया है, पत्रिका में लिखकर बुलाया है, क्योंकि मैं जानता था कि तुम्हारे ये जीवन के क्षण फिर उसी तरह व्यतीत हो जायेंगे। लेकिन मैं तुम्हें बुला रहा हूं क्योंकि मैं तुम्हें वह आनन्द देना चाहता हूं, जो बुद्ध ने लिया, जो वशिष्ठ और विश्वामित्र ने लिया। मैं ऋषियों और मुनियों के जीवन को और उनकी आत्माओं को वापस यहां उतारना चाहता हूं। मैं वापस पृथ्वी पर वह युग लाना चाहता हूं, तुम्हारे माध्यम से। तुम्हें प्राणश्चेतना देकर दुनिया को बता देना चाहता हूं कि मैं इन सारे लोगों को सूर्य बनाकर दिखा सकता हूं। और मैं दिखा दूंगा।

क्योंकि मैं मुर्दा गुरु नहीं हूं, मैं श्मशान में जाने वाला भी गुरु नहीं हूं, मैं इस प्रकार से हतोत्साहित और निराश होने वाला भी गुरु नहीं हूं। ऐसा गुरु बनने की मुझे जरूरत भी नहीं है। न मुझे तुमसे कुछ लेना है, न तुमसे कुछ आकांक्षा है, क्योंकि तुम मुझे कुछ दे ही नहीं सकते, क्योंकि तुम्हारे पास कुछ है ही नहीं। तुम्हारे पास केवल शरीर है, उसकी मुझे जरूरत है नहीं। वह शरीर तुम्हारी पत्नी के पास बंटा हुआ है, बेटों के पास बंटा हुआ है, भाईयों के पास बंटा हुआ है। तुम उसे बांट कर रखो, ये सब तुम्हारी देह से सम्बन्ध रखते हैं। जब तक तुम्हारी देह है तब तक तुम्हारी पत्नी है। और ज्योंहि तुम्हारी देह शान्त हुई, वह लिख देगी – दिवंगत पतिदेव।

कोई पूछेगा कि तुम्हारा उनके सम्बन्ध का क्या हुआ?

– तो कहेगी, सम्बन्ध था!

तुम्हारा पति कहां है? तो कहेगी – पति थे!

वह 'है' से सीधे 'थे' हो जाता है। 'है' से 'थे' इसलिये हो

जाता है कि तुम्हारा उनका सम्बन्ध केवल देह का है। एक क्षण में 'है' और एक क्षण में 'थे' बन गये। और मैं तुम्हें कह रहा हूं
कि मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध में 'है' और 'थे' का भेद नहीं है। अगर मैंने आज से पचीस जन्म पहले भी तुम्हें आवाज देकर गले
से लगाया 'है' तो वह सब वैसा ही आज भी 'है' और आज से पचीस साल बाद भी वैसा ही रहेगा। और अगर हाथ छुड़ा लिया तो
फिर अगले जन्म में फिर हाथ पकड़ूंगा, और कोई रास्ता है ही नहीं, मगर मैं ऐसा क्षण लाना चाहता नहीं हूं।

मैं तुम्हें गणित सिखाने के लिये यहां नहीं बैठा हूं कि यहां ऐसा करना है, और तुम सोचने लगो कि गुरुजी ने ऐसा कह
दिया है, कैसे करना होगा, अब क्या होगा। मैं कह रहा हूं कि तुमने सोच–विचार में बहुत समय व्यतीत कर दिया। तुमने मानसरोवर
में डुबकी लगाई ही नहीं और अगर मानसरोवर में डुबकी लगाई ही नहीं तो हंस बन भी नहीं सकोगे। कौए बन सकते हो, पंखों
में वह ताकत नहीं आ सकती, क्योंकि तुम्हारे पंख मुर्दा हो चुके हैं। उड़ने की क्षमता भूल गये। तुम जरूर वशिष्ठ गोत्र के हो,
विश्वामित्र, अत्रि और कणाद गोत्र के जरूर हो। हो सकता है कि उस भारद्वाज का खून तुम्हारी रगों में बहा हो। बड़ा हो आज से
पांच हजार साल पहले, वह धीरे–धीरे खून बहता–बहता गया, अब उस खून में वह ताकत नहीं है। ताकत इसलिये नहीं रही, कि
वे तो उड़ना जानते थे, उन्होंने तो आकाश को नापा, उन्होंने पूरी पृथ्वी को देखा, पूरे ब्रह्माण्ड को देखा, भारद्वाज ने देखा, पर
तुम उनकी सन्तान होते हुए भी मानसरोवर में डुबकी लगाना भूल गये हो।

भूल इसलिये गये हो, क्योंकि पिछले पचीस–तीस जन्मों से तुमने डुबकी लगाने की क्रिया ही भुला दी है। किनारे
पर खड़े रहे। और किनारे पर खड़े रहने वाला हंस नहीं बन सकता। वह केवल कौआ बन सकता है, वह केवल थोड़ा
सा उड़ा फिर बैठ गया, थोड़ा सा उड़ा, फिर समाप्त हो गया। उसको हंस नहीं बना सकते, और मैं तुम्हें हंस बनाने के
लिये यहां खड़ा हूं। क्योंकि तुम हंस हो, तुम अपनी जाति भूल गये हो। मैं तुम्हें याद दिला रहा हूं, कि तुम भारद्वाज
गोत्र के हो, तुम वशिष्ठ गोत्र के हो। मैं तुम्हें याद दिला रहा हूं कि तुम अत्रि गोत्र के हो, तुम्हारा खून वही का वही खून
है। मगर तुम भुला चुके हो अपने को, तुम अपने पूर्वजों को भुला चुके हो। मैं उस स्टेज को वापस लाना चाहता हूं,
मैं तुम्हें अपनी शक्ति से परिचित कराना चाहता हूं। मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं कि तुम हंस हो और तुम्हें मेरे साथ
मानसरोवर में डुबकी लगानी है। और मैं तुम्हें मानसरोवर में डुबकी लगवाकर उस आनन्द को देना चाहता हूं, उस मस्ती
को देना चाहता हूं, उस जीवन को देना चाहता हूं जो मृत्यु की ओर नहीं जा सकता है। इस जीवन में मृत्यु तुम्हारे पास आ
नहीं सकती। और अगर तुम्हें मृत्यु आ जाये, फिर मुझे धिक्कार है, फिर तुम्हारे अन्दर कोई कमी नहीं है।

मगर न तो तुमने मुझे कभी पहिचानने की कोशिश की और न कभी पहिचाना। न मैंने कभी परिचय दिया, न मुझे परिचय
देने की जरूरत है। न तुम मुझे पहिचान सकते हो, तुम्हारी आंखों में वह ताकत, वह क्षमता है ही नहीं। तुम मुझे एक सामान्य मनुष्य
समझ कर बैठ गये हो। तुमने समझ लिया है कि धोती कुर्ता पहने हुए एक व्यक्ति है जो बिल्कुल मेरी तरह ही हंसता है, मुस्कुराता
है, बोलता है, रोता है, मेरी तरह पत्नी है, बाल बच्चे हैं, वह भी अपनी लड़कियों की शादी करता है, धन कमाता है और बैठा हुआ
है। तुमने ऐसा ही समझा। भीष्म, कर्ण, युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, दुर्योधन और अर्जुन भी वैसा ही समझ रहे थे कृष्ण को। अर्जुन ने कृष्ण
से पूछा – "कि मैं उदास होता हूं तो आप उदास क्यों हो रहे हैं? आपने मुझे विराट रूप दिखाया है, और गीता में कहा है कि मैं
स्वयं हूं, तुम कुछ नहीं हो, भीष्म कुछ नहीं है, भीष्म को तो मैंने मारा है, इस दुर्योधन को मैं मार रहा हूं, द्रोणाचार्य को मैं मार
रहा हूं, तुम तो निमित्त बन रहे हो। तुम कुछ कर नहीं सकते, तुममें ताकत नहीं है। और जब ऐसा है तो मैं पूछता हूं कृष्ण कि
आप फिर उदास क्यों हो रहे हैं? फिर आप भी मेरी तरह परेशान क्यों हो रहे हैं?"

कृष्ण ने कहा – "मैं इसलिये उदास हूं कि मैं तुम्हारे बीच में रहना चाहता हूं। अगर मैं बिल्कुल अलग हो गया, तो तुम
मेरी बात सुन सकोगे नहीं। मैं तुम्हारे रथ पर बैठा हूं, इसलिये तुम मेरी बात सुन रहे हो। इसलिये मैं तुम्हारे साथ मुस्कुरा रहा
हूं, मैं तुम्हारे साथ रो भी रहा हूं। मैं तुम्हारे साथ उदास भी हो रहा हूं। मैं तुम्हारे साथ हंस भी रहा हूं। एक ही रथ पर बैठा हूं
कि तुम मेरी बात समझ सको।"

कृष्ण भी यही कह रहे थे और मैं भी वही कह रहा हूं। मैं भी तुम्हारे रथ पर बैठा हुआ हूं, क्योंकि मैं तुम्हारे जीवन का
सारथी हूं। बैठा हुआ हूं इसलिये कि तुम मेरी बात सुन सको। अगर मैं दूसरे रथ पर खड़ा हो जाऊंगा, हिमालय के किनारे पर
खड़ा हो जाऊंगा, तो तुम मेरी बात सुन नहीं पाओगे, तुम्हारे कानों में वो ताकत नहीं है। इसलिये तुम मुझे पहिचान नहीं पा रहे
हो। अर्जुन भी उसे नहीं समझ सका, उसने केवल सारथी ही समझा, घोड़े चलाने वाला।

कृष्ण को अपमान भी मिला, गालियां भी मिलीं, शायद जितना अपमान कृष्ण को मिला, उतना तो संसार में किसी व्यक्ति
को मिला ही नहीं। इतना मिलने के बाद भी वह अपने आप में मुस्कुराता रहा। फिर भी चैतन्य बना रहा। हजारों हजारों गोपियों
से उसने प्रेम किया, उसके बाद भी वह योगेश्वर बना रहा। 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुं' – उसको जगत का गुरु कहा गया। इसलिये
कि वह अपने आप में जीवित जाग्रत व्यक्तित्व था। महाभारत युद्ध हुआ तो कृष्ण ने कहा – 'अर्जुन! तू जीतेगा, क्योंकि मैं तेरे साथ
हूं। मैं तेरे साथ हूं तो तू हार नहीं सकता!'

और मैं भी कह रहा हूं कि जीवन के इस महाभारत युद्ध में तुम हार नहीं सकते, मैं तुम्हारे साथ में हूं। तुम जीवन जीना
भूल गये हो, मैं तुम्हें प्रत्येक क्षण याद दिला रहा हूं कि तुम्हें मुस्कुराना है। तुम्हें इस बात की चिन्ता नहीं करनी है कि क्या होगा।
क्या होगा, यह तो अब मेरे हाथ में है। क्या हो गया, वह तुमने कर दिया, वह तुम करके आये हो, बच्चे पैदा करने थे वो कर दिये
– बड़े हुए, छोटे हुए, अच्छे हुए, बुरे हुए, कपूत हुए, सपूत हुए, पत्नी जैसी मिली मिल गई – वह सब तुम कर चुके हो।

आगे क्या होगा, वह जिम्मेवारी मेरी है। वर्तमान में तुम्हें क्या करना है, तो मैं तुम्हें इतना ही कह रहा हूं कि तुम्हें कुछ
नहीं करना है। तुम्हें तो बस मेरे पास रहना है, हर क्षण, हर धड़कन, हर चेतना के साथ। हर क्षण मुस्कुराते हुए, हंसते हुए, खिलखिलाते

हुए, हर क्षण आनन्दमग्न होते हुए। यह मग्न होने की क्रिया ही प्राणों में समा जाने की क्रिया है। एक तरफ खड़े होने से प्राणों में नहीं समाया जा सकता। इसके लिये तुम्हें प्रसन्न होना पड़ेगा, खिलना पड़ेगा। जब गुलाब खिलता है तो अपने आप सुगन्ध फैल जाती है, अगर गुलाब यहां से पचीस गज दूर खिला है, तो सुगन्ध अपने आप फैल जायेगी। उसके लिये गुलाब को पास लाने की जरूरत नहीं है। और अगर तुम मेरे प्राणों में समा जाना चाहते हो तो तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं है। माला या मंत्र जाप करने से कुछ नहीं हो पायेगा। वह मैं अपने आप कर लूंगा, क्योंकि मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ा है तो मैं समझता हूं कि मुझे क्या करना है।

मैं तुम्हें इतना ही कह रहा हूं, कि तुम्हें मुस्कुराना है, हर क्षण तुम्हें चिन्तनयुक्त रहना है। हर क्षण तुम ऐसा समझ लो कि मेरे पास में हैं, हर धड़कन में मेरे पास में हैं, एक एक आंसू की बूंद में मेरे पास हैं, मेरी चेतना में, मेरी धड़कन में, मेरे प्राणों में हैं। क्योंकि मैं तुम्हें अन्दर उतारने की क्रिया समझाना चाहता हूं। मैं तुम्हें प्राणगत अवस्था में ले जाना चाहता हूं, क्योंकि जब तुम प्राणगत अवस्था में होगे तो तुम देख सकोगे अपने आपको, अपने पिछले जीवन को, उससे पिछले जीवन को भी, तुम देख सकोगे कि पिछले जीवन में मैं तुम्हारे साथ कहां था, वह तुम खुद देख सकोगे। मैं तुम्हें बता देना चाहता हूं कि तुम देख सकते हो। तुम्हारी इसी आंखों में वह ताकत है। तुम्हारे प्राणों में वो ताकत है, तुम चेतनायुक्त हो, क्योंकि तुम मेरे शिष्य हो, इसलिये तुम देख सकते हो।

और यदि तुम मेरे शिष्य हुए भी अपने मन से, अपने वचन से, अपने प्राणों से, अपनी चेतना से और उसके बाद भी मैं तुम्हें एकदम से हीरा नहीं बना सका, तुम्हें स्वर्ण नहीं बना सका, तो तुम्हारा कोई दोष है ही नहीं। तुम्हारी आवश्यकता यह है कि अगर तुम लोहा हो भी तो तुम बस पारस के पास पहुंच सको। पारस तक पहुंचने की यात्रा तुम्हें करनी पड़ेगी। पारस अपनी जगह है, समुद्र तक पहुंचने की यात्रा तुम्हें करनी होगी। तुम्हें अपने पांवों से मानसरोवर तक पहुंचना है। फिर मैं तुम्हारा हाथ पकड़ कर अन्दर कूद जाऊंगा, तुम्हें हिचकिचाने की जरूरत नहीं है। तुम्हें कुछ सोचने की जरूरत नहीं है। तुम जो कुछ भी कर चुके हो, उसकी तुम्हें चिन्ता करने की भी जरूरत नहीं है, तुमने जो कुछ भी किया हो – अच्छा या बुरा। पर तुम अगर समुद्र में कूद सको तो मैं तुम्हारे साथ में हूं, डूबने तुम्हें नहीं दूंगा। बीच में तुम्हें नहीं छोड़ूंगा, मझधार में तुम्हारा हाथ नहीं छोड़ूंगा। मझधार में तुम्हें अलग नहीं होने दूंगा। हर क्षण, हर पल, हर धड़कन में मैं तुम्हारे पास में हूं, क्योंकि मैं तुम्हारा गुरु हूं और तुम केवल और केवल मेरे हो।

इसीलिये अमृत का तात्पर्य है जीवित होना, तुम यहां आये हो मुर्दा होकर, तुम्हारे चेहरे पर चेतना नहीं है, तुम्हारे चेहरे पर खिलखिलाहट है नहीं क्योंकि भूल चुके हो तुम। मुर्दा व्यक्ति मुर्दा को ही पैदा कर सकता है। पैदा तो करता है, जीव तो डालता है, उसको मुस्कुराहट नहीं दे सकता। क्योंकि तुमने पैदा किया तो रोते हुए पैदा किया, हंसते हुए पैदा नहीं कर सके। हंसते हुए पैदा करना जीवन की एक चेतना है। इसलिये गुरु वापस जन्म देता है, तब 'द्विज' कहा जाता है। 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते' – गुरु वापस दूसरी बार जन्म देता है, मैं तुम्हें वापस दूसरी बार जन्म दे रहा हूं। क्योंकि तुम रोते हुए पैदा हुए हो, मैं तुम्हें मुस्कराने की कला सिखा रहा हूं, हंसना–खिलखिलाना सिखा रहा हूं, हर क्षण मग्न होने की कला सिखा रहा हूं।

जब यहां गायन हो तो तुम नृत्य कर सको, झूम सको, मस्ती में थिरक सको, तुम्हें कोई 'भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम' करने की जरूरत नहीं है, वह मैं अपने आप कर लूंगा। तुम्हारे जितने भी मंत्र जाप हैं, वो मैं करूंगा, तुम्हारी जो साधनायें हैं वो मैं करूंगा। तुम्हारी चिन्ताएं, तुम्हारी बाधाएं, तुम्हारे दुःख, तुम्हारी परेशानी वह सब मैं अपने ऊपर झेलूंगा, तुम्हें मुक्त होना है, मेरे प्राणों के साथ रहना है हर क्षण। और हर धड़कन के साथ, हर चिन्तन के साथ मुझमें समा जाना है।

और अवश्य ही मैंने जो वायदा तुमसे किया है, उसे वायदे को मैं पूरी तरह निभाऊंगा। तुम्हें उस जगह पहुंचाऊंगा जिससे कि प्रत्येक क्षण तुम्हारा आनन्दमग्न हो सके, उत्सवमय हो सके, मैं तुम्हें ऐसा ही आशीर्वाद देता हूं, कल्याण कामना करता हूं।

– तुम्हारा सद्गुरुदेव

अपनों से अपनी बातें

निखिल जयंती विशेषांक के रूप में प्रस्तुत है आप के समक्ष अप्रैल माह का यह अंक।

प्रति वर्ष इसी माह की **२१ तारीख** को प्रसंग उपस्थित होता है उन पूज्यपाद गुरुदेव **परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानंद जी** के अवतरण दिवस का जिनके विषय में कभी सिद्धाश्रम के अद्वितीय योगी परमहंस विशुद्धानंद जी ने अत्यंत भावभीने शब्दों में कहा था- ***'यदि एक वाक्य में निखिल जी के विराट व्यक्तित्व को बांधना हो तो मैं बस इतना ही कह सकूंगा— उनके सारे शरीर में सिर से पांव तक केवल हृदय ही हृदय है!'***

स्वामी विशुद्धानंद जी के ये शब्द कहीं से भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं हैं और न इस बात की सत्यता में कहीं से भी संशय के लिए कोई स्थान है।

यह गुरुदेव का अपने शिष्यों से प्रेम का ही कोई ताना-बाना था जिसके वशीभूत होकर उन्होंने इस जगत में **डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली जी** के रूप में अवतरण लिया और जिस मूल संदेश को वे इस जगत में छोड़ कर गए हैं, वह भी बस एक वाक्य में है — ***तुम प्रेममय बनो, प्रेमसिक्त बनो सम्पूर्ण अर्थों में प्रेम ही बन जाओ, यही तो ब्रह्म से साक्षात्कार है।***

गुरु को निःस्वार्थ प्रेम के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय से समाहित नहीं किया जा सकता है लेकिन इस प्रेम का अर्थ गुरु की ही भक्ति प्रारम्भ कर देना नहीं है! -यह भी पूज्यपाद गुरुदेव ने बताया और आकंठ भक्ति में डूबे समाज के सामने भक्ति के स्थान पर साधना जैसी विद्रोह से भरी धारणा को रखना— कितना कठिन कार्य था यह! समाज तो अपनी धारणाओं के अनुकूल ही कुछ सुनना चाहता है क्योंकि उसमें अहं की तुष्टि जो होती है लेकिन कुछ ऐसे भी व्यक्तित्व होते हैं जो वही करते हैं जिसे करने के लिए वे आते हैं इस जगत में। न कोई उन्हें झुका सकता है और न कोई उन्हें उनके पथ से डिगा सकता है।

ऐसे ही व्यक्तित्वों को कालांतर में समाज युग-पुरुष कहता है, उनके ज्ञान और उनकी चेतना के प्रति प्रणम्य होता है किंतु प्रणम्य होने के साथ-साथ यदि इस बात को भी ध्यान में रखा जाए कि क्या वेदना सहनी पड़ी होगी उन्हें-तो भविष्य के प्रति एक दृष्टि भी बनी रहती है।

. . . जो जमीन ऊसर पड़ी हो उसमें से तपती धूप में एक-एक नुकीले पत्थर को चुनकर निकालने में जो वेदना होती है उसे वही समझ सकता है जो कभी ऐसे क्रम से होकर आया हो लेकिन जिन्हें समाज युग-पुरुष की संज्ञा देता है वे वर्तमान की पीड़ाओं न देखकर एक स्वप्न देखते हैं।

उनकी दृष्टि में ऊसर जमीन के स्थान पर एक पुष्पित और पल्लवित उपवन झिलमिला रहा होता है जिसमें खिले होते हैं गुलाब के सहस्रों पुष्प! अपनी सुगंध और बहुरंगी छटा को बिखेरते हुए . . .

वे अपने जीवन में जितने भी सृजन के क्षण मिलते हैं उनमें ऐसा ही कुछ करके जाते हैं और यह तो समाज के ऊपर है कि वह उन्हें कितना अवकाश देता है।

सद्गुरुदेव ने एक बार कहा था – *मैंने बहुत परिश्रम किया है तपते हुए रेगिस्तान में गुलाब की सुगंध को बिखेर देने के लिए!*

– और जिस अनकही बात को वे एक दायित्व के रूप में हम सभी शिष्यों के लिए शेष छोड़ गए हैं वह यह है कि उन गुलाब के पौधों को निरंतर जल देकर मुरझाने से बचाए रखा जाए उनकी झाड़-झंखाड़ से सुरक्षा की जाती रहे नहीं तो पूज्यपाद का स्वप्न अधूरा रह जाएगा और अभी बहुत कुछ करना शेष है।

ऐसा कुछ दृढ़ संकल्प के साथ करना उस अद्वितीय गुरु की जयंती को वास्तविक रूप में सम्पन्न करना होगा जिस गुरु ने प्रत्येक विसंगति पर पूरी क्षमता से प्रहार करने की बात कही है अपने शिष्यों से।

साधना और गुरु-चेतना के गुलाबों को बचाना है तो क्षमता उत्पन्न करनी होगी भक्ति व छद्म रूपी झाड़-झंखाड़ों से उलझ कर उन्हें नष्ट करने की और झाड़-झंखाड़ों से उलझने में हथेलियों पर कुछ खराशें तो आएंगी ही। आज इतना भी कुछ करना कम न होगा क्योंकि. . . . .

माना कि इस ज़मीं को न गुलज़ार कर सके
कुछ ख़ार कम कर गए गुज़रे जिधर से हम

(गुलज़ार-बाग-घर, ख़ार-काँटे)

स्नेहसिक्त आमंत्रण

आखिर सद्गुरु क्या हैं?

व्याख्या करना तो शास्त्रकारों का कार्य रहा है। और जहां जहां भी गुरु शब्द का प्रयोग हुआ है, वहां तो हजारों ग्रंथ रच दिये गये हैं। गुरु की इतनी अधिक महिमा वर्णित की गई है कि गुरु और शिष्य के बीच में दूरी बढ़ती ही गई, जबकि गुरु का वास्तविक तात्पर्य है जो प्यार दे, अपने हाथों से थपथपाकर शिष्य को तैयार करे। जहां मन की दूरी हुई वहां शिष्य एकाकार नहीं हो सकता, आज प्रत्येक शिष्य को यह जानना आवश्यक है कि उसके सद्गुरु क्या हैं? उनका पूरा अर्थ क्या है? वे साकार हैं या निराकार? वे देवता हैं, भगवान हैं या ब्रह्म हैं – इन्हीं प्रश्नों को उत्तरित करने का यह प्रयास है।

सद्गुरु के सम्बन्ध में प्रथम उत्तर यह है कि वे ही मेरे प्रिय सद्गुरुदेव हैं, जिनके माध्यम से मैं परमात्मा की शक्ति का बोध कर सका, उसे अपने भीतर उतार सका, उस विराट सत्ता का अंग बन सका, जिन्होंने जीवन भर योग अर्थात मन को मनस से अर्थात परमात्मा से जोड़ना सिखाया। सद्गुरु तो वह शक्ति है, जिन्होंने जीवन के अन्धकार को समाप्त करते हुए अपने ज्ञान के माध्यम से ज्ञान चक्षुओं को जाग्रत किया और जब ज्ञान चक्षु जाग्रत हुए तब मैं पहिचान सका कि मैं कौन हूं, इस संसार में मैं क्यों आया हूं और मेरी क्रिया का स्वरूप क्या रहेगा, *वे ही तो मेरे सद्गुरुदेव निखिल हैं।*

संसार में व्याप्त परम चेतना जो पूर्ण आनन्द देने वाली है, उस चेतना का एक स्पर्श मंत्र के माध्यम से, दीक्षा के माध्यम से अनुभव किया है, उस कभी न समाप्त होने वाली चेतना के समुद्र रूप ही तो मेरे सद्गुरुदेव निखिल हैं।

ज्ञान शक्ति समारूढं तत्व माला विभूषितं। भुक्ति मुक्ति प्रदातारं तस्मै श्री गुरवे नमः॥

मेरे सद्गुरुदेव निखिल तो वह हैं, जो ज्ञान और शक्ति में स्थित हैं और उन्होंने कोई मनकों की माला नहीं धारण की है। उन्होंने तो जीवन तत्व और सिद्धान्तों की माला धारण की है, जिनके द्वारा मुझे संसार में '**भुक्ति**' अर्थात इस जीवन को किस प्रकार से भोगना है, किस प्रकार से मुझे भौतिकता का वरण करना है, इसका ज्ञान हुआ और इसके साथ यह भी ज्ञान हुआ कि जीवन में हर बन्धन से '**मुक्ति**' किस प्रकार सम्भव है। दोनों ही स्थितियों को उन्होंने प्रदान किया, *वे ही तो मेरे सद्गुरुदेव निखिल हैं।*

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरंजनं। बिन्दुनाद कलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

मेरे सद्गुरुदेव निखिल तो वह शक्ति है जो मुझे निरन्तर शाश्वत रूप से चेतना देते रहते हैं, जो अपने शान्त स्वरूप के अनुरूप शान्ति प्रदान करते हैं। जो आकाश से भी परे हैं अर्थात किसी लोक में स्थित न होकर के अपने शिष्य के हृदय में स्थित हैं, जिन्हें किसी बिन्दु द्वारा, किसी कला द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि उनका स्वरूप तो शिष्य के तेज में व्याप्त है। ऐसे *ही प्रिय सद्गुरुदेव मेरे निखिल हैं।*

जो परम तत्व को बोध कराने वाले हैं; जिनके जीवन में आने से अन्धकार, आर्त, विषाद समाप्त हो जाते हैं और मन में परम तत्व का परमानन्द समा जाता है और जो हर समय यही कहते हैं –

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवाव शिष्यते॥

अर्थात जो स्वयं तो पूर्ण हैं ही, अपने शिष्य को भी पूर्णता प्रदान करते हुए उसे सम्पूर्ण अर्थात पूर्णतायुक्त व्यक्ति बनाते हैं, जो शिष्य रूपी श्रेष्ठ रचना का निर्माण करते हैं, वे ही तो मेरे प्रिय सद्गुरु निखिल हैं, जिनके बारे में केवल और केवल इतना ही कहा जा सकता है --

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।

21.4.2000
या किसी भी २१ तारीख को

गुरु प्राण धारण साधना

प्रातः स्नानादि नित्य क्रिया से निवृत्त होकर पूजा स्थान में शुद्ध धोती पहन कर आसन पर बैठें। सामने चौकी पर श्वेत या पीत वस्त्र बिछा कर सुन्दर गुरु चित्र स्थापित करें। अपने समीप ही साधना सामग्री – 'गुरु स्थापन यंत्र', 'चेतना माला', 'रुद्राक्ष' एवं 'गुरु गुटिका' तथा पूजन की अन्य सामग्री रखें। गुरु चित्र के सामने किसी थाली में कुंकुम से स्वस्तिक बनाकर उस पर 'गुरु स्थापन यंत्र' को स्थापित करें। यंत्र के दाहिनी ओर गुटिका तथा बाईं ओर रुद्राक्ष को रख कर धूप, दीप प्रज्वलित करें। पहले पवित्रीकरण और आचमन करके दोनों हाथ जोड़ कर गुरु प्रार्थना करें।

प्रार्थना

ॐ सर्व मंगल मांगल्यं चैतन्यं वरदं शुभम्।
नारायणमं नमस्कृत्य गुरु पूजां समाचरेत्॥

अपने सामने किसी पात्र में थोड़ा जल लेकर उसमें कुंकुम, अक्षत, और पुष्प की पंखुड़ियां मिला लें. उसके बाद उसमें सभी तीर्थों का आवाहन करें –

ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

भूतापसारण

बाएं हाथ में अक्षत लेकर दाएं हाथ से ढक दें तथा निम्न मंत्र बोलते हुए सभी दिशाओं में अक्षत छिड़कें –

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

इसके बाद **'सर्व विघ्नान् उत्सारय – हूं फट् स्वाहा'** का उच्चारण करते हुए दाएं पैर की एड़ी से ३ बार भूमि पर आघात करें। तत्पश्चात समस्त गुरुओं को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करें और आगे दिये प्रणाम मंत्रों का उच्चारण करें –

गुरु जन्म दिवस पर सम्पन्न की जाने वाली इस साधना के महत्व के बारे में पत्रिका के मार्च-२००० अंक में विवेचन किया गया था, उसी साधना की पूजन विधि प्रस्तुत है।

ॐ ऐं गुरुभ्यो नमः।
ॐ ऐं परम गुरुभ्यो नमः।
ॐ ऐं परात्पर गुरुभ्यो नमः।
ॐ ऐं पारमेष्ठि गुरुभ्यो नमः।

गुरु पंक्ति को प्रणाम करने के बाद अपने हृदय में गुरु तत्व को स्थापित करें –

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्री निखिलेश्वरानन्द देवतायाः प्राणा इह प्राणाः।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्री निखिलेश्वरानन्द देवतायाः जीव इह स्थितः।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्री निखिलेश्वरानन्द देवतायाः सर्वेन्द्रियाणि।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः श्री निखिलेश्वरानन्द देवतायाः वाङ्मनश्च चक्षु श्रोत्र जिह्वा घ्राण प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

अब अपने को गुरुत्व चेतना से सम्पन्न अनुभव करें।

मातृका न्यास (विनियोग)

दाहिने हाथ में जल लेकर विनियोग करें –

ॐ अस्य मातृका मंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, मातृका सरस्वती देवता, हलीं बीजानि, स्वरा शक्तयः अव्यक्तं कीलकं सर्वाभीष्ट सिद्धये मातृका न्यासे विनियोगः।

इसके बाद निम्न मंत्र का उच्चारण करते हुए विभिन्न अंगों को दाएं हाथ से स्पर्श करें –

ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः	– सिर
ॐ गायत्रीच्छन्दसे नमः	– हृदय
ॐ मातृका सरस्वत्यै देवतायै नमः	– मुख
ॐ हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः	– मूलाधार
ॐ स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः	– दोनों पैर
ॐ अव्यक्त कीलकाय नमः	– सभी अंग

गुरुदेव का दोनों हाथ जोड़कर आवाहन करें –

आवाहयामि रक्षार्थं पूजार्थं च मम क्रतो:।
इहागत्य गृहाण त्वं पूजां यागं च रक्षये॥

श्री गुरुदेवाय नमः आवाहनं समर्पयामि।

आसन

यंत्र व चित्र को पुष्प का आसन दें –

ॐ सर्वभूतान्तरस्थाय सर्वभूतान्तरात्मने।
कल्पयाम्युपवेशार्थमासनं ते नमो नमः।

इदं पुष्पासनं समर्पयामि नमः।

पाद्यं

चित्र के समक्ष दो आचमनी जल चढ़ावें –

यत् भक्तिलेश सम्पर्कात् परमानन्द सम्प्लवः।
तस्मै ते परमेशान पाद्यं शुद्धाय कल्पये॥

इदं पाद्यं समर्पयामि नमः।

अर्घ्य

दुर्वाक्षत समायुक्तं विल्व पत्रं तथा परम्।
शोभनं शंख पात्रस्थं गृहाणार्घ्यं महेश्वरः॥

अर्घ्यं समर्पयामि नमः।

आचमन

मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्व पापहरं शुभम्।
गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम्॥

आचमनीयं समर्पयामि नमः।

स्नान

इदं सुशीतलं वारि स्वच्छं शुद्धं मनोहरम्।
स्नानार्थं ते मया भक्त्या कल्पितं प्रतिगृह्यताम्॥

स्नानं समर्पयामि नमः।

यंत्र के साथ रुद्राक्ष एवं गुरु गुटिका का भी उपरोक्त प्रकार से पूजन करते रहें, उन्हें भी स्नान, अक्षत, धूप आदि से पूजन करते रहें।

वस्त्र

मायाचित्र पटाच्छन्नं निजगुह्योरु तेजसे।
मम श्रद्धा भक्ति वासं युग्मं गृह्यताम्॥

वस्त्रोपवस्त्रं समर्पयामि नमः।

तिलक

महावाक्योत्थ विज्ञानं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम्॥

चन्दनं समर्पयामि नमः।

सकुंकुमं अक्षतान् समर्पयामि नमः।

चन्दन एवं अक्षत चढ़ाएं।

पुष्पमाला

तुरीयं वन सम्पन्नं नानागुण मनोहरम्।
आनन्द सौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम्॥

पुष्पमालां समर्पयामि नमः।

धूप, दीप

नैवेद्यं

शर्कराघृत संयुक्तं मधुरं स्वादुचोत्तमं।
उपहार समायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥

ऋतु फलानि समर्पयामि नमः।

शुद्ध जल से पांच बार आचमन करावें।

इसके बाद मुख शुद्धि के लिए पान समर्पित करें –

ताम्बूलं समर्पयामि नमः।

इसके बाद **चैतन्य माला** से निम्न मंत्र की एक माला जप सम्पन्न करें –

॥ ॐ ह्रीं ऐं परात्पराय परमहंसाय निखिलेश्वराय धीमहि ऐं ह्रीं ॐ नमः ॥

Om Hreem Ayeim Paraatparaay Paramhansaay Nikhileshwaraay Dheemahi Ayeim Hreem Om Namah

फिर गुरु आरती सम्पन्न करके पुष्पांजलि समर्पित करें। यह ३ माह की साधना है, इसमें नित्य उपरोक्त मंत्र की एक माला जप करना अनिवार्य है, नित्य पूजन सम्पन्न करने की आवश्यकता नहीं है। उपरोक्त पूजन को हर माह की २१ तारीख को दुहरा लें तथा प्रसाद घर में सभी को वितरित करें। ३ माह बाद सभी सामग्री को जल में विसर्जित कर दें।

इस साधना द्वारा शनैः शनैः साधक के अन्दर गुरुदेव की समस्त शक्तियां स्वतः ही उतरने लगती हैं, आवश्यकता है तो धैर्य और संयम की।

यदि साधक किन्हीं कारणवश इस साधना को २१ अप्रैल को प्रारम्भ नहीं कर पाएं, तो किसी भी माह की २१ तारीख को प्रारम्भ कर सकते हैं। ऐसा करने में कोई न्यूनता नहीं क्योंकि साधकों के लिए प्रत्येक २१ तारीख सद्गुरुदेव का जन्म दिवस ही है। यदि साधना सामग्री नहीं मंगा सके हैं, तो किन्हीं दो व्यक्तियों को पत्रिका की सदस्यता धारण करवा कर इस सामग्री को निःशुल्क प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए आप अपने किन्हीं दो परिचितों के डाक पते को पोस्टकार्ड क्र.६ (पृष्ठ:५४, अप्रैल अंक) पर लिख कर जोधपुर कार्यालय भेज कर उन्हें पत्रिका का सदस्य बना दें। आपको ४३८/- की वी.पी. द्वारा साधना सामग्री भेज दी जाएगी तथा आपकी ओर से आपके परिचितों को वर्ष पर्यन्त पत्रिका भेजी जाती रहेगी। (अतिरिक्त सन्दर्भ: मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान, मार्च-२०००, पृष्ठ:२८)

वसन्तं भावयेद् हृदि

(हृदय में सात्विक भावों का उदय ही वसन्त कहा जाता है।)

जरा सिर उठा कर तो देखो!

वसंत फिर आ गया है

शिष्य का क्या है, जब गुरु की सुमधुर वाणी उसके कानों में गूंजी, जब उसके प्राणों को गुरु रूपी पुरवाई ने स्पर्श कर लिया, जब कहीं प्रेम की सुगंध फैली– तभी उसके लिए वसंत है और ऐसा वर्ष में बस एक बार नहीं बार–बार है . . .

कोयल बोल रही है!

वह देखो कोयल बोल रही है . . .

हां! यह तो मैं भी सुन रहा था कि असमय कोयल की मीठी बोली से वन का वह उपखंड गुंजरित हो रहा है किन्तु इसमें रोने की क्या बात हो सकती है, मैं यह समझने में स्वयं को असमर्थ पा रहा था उधर स्वामी असंगानंद जी थे कि वे बस रोए जा रहे थे तो रोए ही चले जा रहे थे।

एक वयोवृद्ध संन्यासी को इस तरह से रोते देखना मेरे लिए किसी अचरज से कम नहीं था और वह भी स्वामी असंगानंद जी जैसे अक्खड़ संन्यासी को जिन्हें पीठ पीछे अन्य संन्यासी स्वामी पंगानंद कह कर पुकारते थे क्योंकि शायद ही कोई दिन ऐसा जाता हो जिस दिन उनका किसी अन्य संन्यासी से विवाद न होता हो।

कुछ लोग उन्हें स्वामी प्रसंगानंद भी कह कर बुलाते थे क्योंकि जहां कहीं भी कोई विवाद की स्थिति हो वहां वे बिन बुलाए पहुंच कर समाधान देने को प्रस्तुत हो जाते थे।

जीवन में आनन्द के क्षण सृजित करने की दो प्रमुख स्थितियां होती हैं हास्य एवं विनोद। हास्य का सृजन तो एक सामान्य व्यक्ति भी कर सकता है किन्तु विनोद का सृजन करना तो मानों बस संन्यासी ही जानते हैं और इस रूप में वे अपने जीवन को और भी अधिक आनन्द युक्त बनाते हुए गतिशील रहते हैं।

स्वामी असंगानंद जी भी इसके अपवाद नहीं थे किन्तु उस दिन तो वे कोई विनोद करते नहीं लग रहे थे, न कहीं से उनकी भाव-भंगिमाओं से भी ऐसा लग रहा था। उनकी अर्धश्वेत जटा खुल कर बिखर गयी थी और अश्रुओं का प्रवाह उनकी घनी श्वेत-श्याम जटा के मध्य में यूं लुढ़क रहा था मानों अभी-अभी अलकनंदा ने अपने उद्गम से प्रवाह लिया है और वह उबड़-खाबड़ चट्टानों के मध्य से अपना मार्ग पाने के लिए छटपटा रही है।

भारी कद-काठी के असंगानंद जी के एकाएक बैठ जाने से भूमि का एक भाग धसक सा गया था और उनकी आंखें शून्य में स्थिर हो गयी थीं। रुदन तो उनका रुक चुका था किन्तु जैसे कोई बालक जिद में आ जाने पर रोते-रोते फिर अंत में हिचकी भरते हुए खुद ही चुप हो जाता है, वही उनकी भी स्थिति हो रही थी। मैंने उनका यह रूप पहले कभी नहीं देखा था अतः स्वाभाविक था कि मैं भी गंभीर हो जाता।

दोनों के गंभीर हो जाने से वातावरण में कुछ बोझिलता सी व्याप्त हो गयी थी जिसे स्वयं स्वामी जी ने तोड़ते हुए पूछा– ***क्या बात हो गयी है?***

मैं तो मानों इसी क्षण की प्रतीक्षा में था और प्रत्युत्तर में मैंने भी पूछ लिया – ***यही तो मैं आप से जानना चाहता हूं!***

स्वामी जी तब तक प्रकृतिस्थ हो चुके थे और स्वर को संयत करके बोले – ***ऐसा ही होता है, गुरु का आना और जाना दोनों ही रुला जाता है।***

मैंने सहज भाव से पूछा – ***क्या गुरु जी आए हैं? कहां रुके हैं? कब तक रहेंगे? मैं भी उनसे मिलना चाहता हूं।***

मेरा प्रश्न करना था कि वे अपने पूर्ववत् रूप में बिफर पड़े – ***सुना नहीं तूने कोयल बोल रही थी।***

तो क्या उस कोयल के रूप में गुरुजी थे?

मेरा यह प्रश्न करना और प्रत्युत्तर के रूप में स्वामी जी का दण्ड फेंक कर मुझ पर प्रहार करना-दोनों बातें एक ही

साथ घटित हुई। खैर! संन्यास जीवन में इन बातों का कोई विशेष बुरा नहीं माना जाता किन्तु मेरी जिज्ञासा तो अधूरी रह गयी थी।

कैसा वज्र मूर्ख भेजा है गुरुजी तुमने मेरे पास! कहता है कि तुम्हारे पास रहा है और मुझसे पूछ रहा है कि क्या गुरुजी कोयल बन कर आए थे! इसे इतना भी नहीं पता कि जब आप पधारते हैं तो सारी प्रकृति में बस वसंत सा छा जाता है, कोई समझे या न समझे कोयल तो कुछ समझ कर कूकने लग जाती है, अरे! इनसे अच्छे तो ये पशु-पक्षी ठहरे . . . बात करते हैं . . . न जाने कहां कहां से आ जाते हैं . . .

वे मुझे कुछ सुनाना चाह रहे थे या कि गुरु जी को, यह स्पष्ट तो नहीं हो पा रहा था लेकिन कुछ-कुछ समझ में आता सा लग रहा था। कभी पूज्यपाद गुरुदेव ने अपने किसी शिष्य से कहा था कि गुरु का आशीर्वाद तो फलदायक होता ही है, उसका श्राप भी फलदायक बन जाता है। स्वामी जी को दंड फेंक कर मारने का कुछ क्षोभ हो रहा था अतः वे सहज ही मुझसे वार्तालाप करने की चेष्टा करने लग गए।

मैं कुछ दिन स्थान परिवर्तन करने एवं *बहता पानी निरमला* के दृष्टिकोण से पूज्यपाद गुरुदेव से अनुमति लेकर उत्तराखंड की उस पावन भूमि पर चला गया था जो सदा से मुझे अतिशय प्रिय रही है।

जाते समय गुरुदेव ने मुझे अपने एक संन्यासी शिष्य का पता देकर कहा था कि उसी के सान्निध्य में रुकना और इस तरह से मैं स्वामी असंगानंद जी के सान्निध्य में पहुंचा था। इस मध्य में न तो गुरुदेव ने मुझे किसी साधना को सम्पन्न करने का निर्देश दिया था और न मैंने ही किसी साधना को सम्पन्न करने का मानस निर्मित किया था क्योंकि प्रकृति के सान्निध्य में रहना स्वयं में किसी साधना से कम नहीं होता, यह मेरा दृढ़ विश्वास रहा है।

संन्यास जीवन में और कोई विशेषता हो या न हो एक बात तो मुझे बहुत अधिक सुखद प्रतीत हुई है कि उस जीवन में न तो किसी प्रवंचना के लिए स्थान होता है और न ही इस समाज की भांति किसी झूठी औपचारिकता की। जो होता है वह दो टूक होता है और स्पष्ट होता है। स्वामी जी भी इसी भाव में जो कुछ कहने लग गए थे प्रकटतः उसमें कोई संदर्भ नहीं था किन्तु मेरे लिए तो वह संदर्भयुक्त था।

. . . गंगा के किनारे बैठ कर गंगा का महत्व समझ में नहीं आता-गुरुजी सही कहते हैं। नहीं तो इतनी विराट सत्ता के सहचर्य में रह कर इतनी मूर्खतापूर्ण बात कैसे कोई कर सकता था?

योगी और विशेषकर संन्यासी जिस शैली में बात करते हैं वह एक प्रकार से आत्मालाप की शैली होती है अर्थात कहने वाले को यह बोध ही नहीं होता कि वह क्या कह रहा है, क्यों कह रहा है।

–उसे कोई सुन रहा है या नहीं सुन रहा है-वह इसकी चिंता से भी मुक्त होता है, इन बातों का मुझे ज्ञान था और मैं यह भी जानता था कि ऐसे क्षणों में जो कुछ भी प्राप्त होता है वह वास्तव में उसी गुरु द्वारा निःसृत ज्ञान का अमृत बिंदु होता है जिसे **सहस्त्र पादाक्षि शिरोरुबाहवे** अर्थात् सहस्त्र पैरों व सहस्त्र बाहुओं वाला कह कर प्रणाम किया जाता है।

–तूने उन्हें एक सामान्य सा गुरु या अधिक से अधिक एक प्रकांड ज्योतिषी और तंत्र-मंत्र वेत्ता भर ही समझ रखा है-मुझे तो ऐसा ही लग रहा है। अरे! वह तो अखिल रूप में व्याप्त होता हुआ भी निखिल है और परम प्रसन्न भी है तभी तो उसे कहते हैं हम-परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानंद!

–अंतिम वाक्य को नाटकीय रूप में कहते-कहते और एक धप्पा मेरी पीठ पर मारते हुए स्वामी जी ठठा कर हंस पड़े और सारा वातावरण भी एकाएक खिलखिला सा गया। संन्यासियों के जीवन या मानस में कोई और तो दूसरा होता नहीं इसी से उनका हास्य-विनोद, क्रोध, प्रेम-सब कुछ आधारित होता है अपने गुरु पर और स्वामी जी भी इसका अपवाद नहीं थे।

वातावरण स्निग्धता और आत्मीयता से परिपूर्ण हो गया था और यही अवसर था कि मैं अपने मन में तत्काल उठे प्रश्न का समाधान स्वामी जी से प्राप्त कर लूं। कोयल बोलने का तात्पर्य तो मैं समझ गया था कि अवश्य ही कुछ क्षणों पूर्व पूज्यपाद गुरुदेव सूक्ष्म रूप में उपस्थित हुए थे किन्तु यह अखिल और निखिल शब्द का भेद?

सचमुच मैंने तो कभी इस दृष्टिकोण से पूज्यपाद के
नाम पर विचार किया ही नहीं था और सहज सी धारणा रखता
कि उनके इस नाम के पीछे जो तात्पर्य है वह मात्र इतना ही है
कि वे समस्त सचराचर प्रकृति को स्वयं में समाहित करते हुए
गतिशील हो रहे हमारे पूज्य और प्रिय गुरुदेव हैं।

जीवन की कोई भी कला क्यों न हो, प्रत्येक की
अभिव्यक्ति उनके द्वारा इस रूप में सम्भव होती थी कि लगने
लगता था-वे बस इसी कला में पूर्ण रूप से निष्णात हैं किन्तु
अगले ही पल वे किसी अन्य भाव में आरूढ़ होते हुए इस
प्रकार समक्ष आते थे कि उनका पूर्व रूप विस्मृत हो जाता था
और लगता था कि जो कुछ अभी कुछ क्षण पहले देखा वह एक
स्वप्न था। **इसी से तो आज तक उनके साथ व्यतीत हुए एक-एक पल किसी स्वप्निल जगत में व्यतीत हुआ पल लगते हैं जिनकी स्मृतियां इस जगत की विसंगतियों में चित्त को और भी अधिक दग्ध कर जाती हैं।**

. . . मैं स्मृतियों में लीन हो रहा था कि सहसा
अलकनंदा में गिरी किसी भारी चट्टान की ध्वनि ने मुझे सचेत
कर दिया और मैं पुनः सचेत होकर सोचने लग गया कि अवश्य
ही कोई गूढ़ भेद है गुरुदेव के इस विशेषण के पीछे क्योंकि
संन्यस्त जीवन में शिष्य को जो नाम अपने गुरु से प्राप्त होता
है वह मात्र नाम न होकर एक विशेषण ही तो होता है।

मैं इस गहन विवेचन में खो गया कि यदि पूज्यपाद
गुरुदेव को ऐसा विशेषण उन्हें अपने गुरुदेव परमहंस स्वामी
सच्चिदानंद जी द्वारा प्राप्त हुआ है तो अनायास तो नहीं हो
सकता, वे उन्हें परमहंस स्वामी अखिलानंद का नाम भी तो
प्रदान कर सकते थे।

दोनों ही पदों का भाव-सब कुछ स्वयं में समाहित
कर लेने में अथवा सभी के मध्य स्वयं को विस्तारित कर देने
में ही तो निहित है, कम से कम मैं अल्पज्ञ शिष्य तो यही
समझता था। व्याकरण के आचार्य इस विषय में क्या कहते हैं,
यह न तो मुझे और न मुझ जैसे अनेक शिष्यों को ज्ञात होगा।

मेरे नेत्रों के समक्ष पूज्यपाद गुरुदेव का बिम्ब अपने
सम्पूर्ण हास्य के साथ उपस्थित था मानों वे भी मेरी इस उलझन
का आनन्द ले रहे हों और जैसे बस इतने में ही उनका कौतूहल
पूरा न हो रहा हो तो वे स्वामी असंगानंद जी को भी मंद-मंद
मुस्कराने के लिए उत्प्रेरित कर रहे हों।

अखिलानंद और निखिलेश्वरानंद? ऐसी पहेली तो
मैंने पहले कभी नहीं बूझी थी और अपने समस्त ज्ञान-विज्ञान
को लगाने के बाद जब मैंने पराजय स्वीकार करने के भाव में
स्वामी जी की ओर देखा तो वे सहज स्वर में बोल पड़े – **अरे भाई! जो एक पल में सब जगह समाया हुआ हो वह हुआ अखिल और जो समाते हुए भी न समा रहा हो, उन्मुक्त हो वह हुआ निखिल – जैसे यह उन्मुक्त आकाश! सारा ब्रह्माण्ड इसी में समाया है लेकिन यह तो किसी में नहीं समाया है। नहीं समाया है न?**

अंतिम वाक्य स्वामी जी ने कुछ इस तरह से पुचकार
भरे स्वर में कहा मानों कह रहे हों-जीना तो मैं ही हूं पर चलो
मैं तुम्हें हारा नहीं मानता!

–और उनके स्वर में छिपे शिशुत्व व ममत्व को अनुभव
करके मेरा अन्तर्मन तक मुस्करा गया . . .

मैं आज भी एकांत में जब स्वामी जी के शब्दों का स्मरण
करता हूं तो प्रत्येक बार एक नया अर्थ सामने आ जाता है।

शास्त्रों में ऐसी ही स्थिति को ब्रह्मविद्-वरिष्ठ की
अवस्था के रूप में वर्णित किया गया है और इसे ही साधना का
सर्वोच्च सोपान माना गया है। सामान्यतया: साधक जिस ब्रह्म
तत्व की प्राप्ति कर के उसके आनन्द में आत्मलीन हो जाते हैं,
जगत के कर्तव्यों से कुछ विमुख से हो जाते हैं, तब ऐसे उच्चतर
ही नहीं सर्वोच्च सोपान पर खड़े साधक जैसे कि पूज्यपाद गुरुदेव
हुए हैं-वे अपनी आत्मलीनता के सुख को त्याग एक प्रकार से
कहें तो केवल विष पीने के लिए इस धरा पर अवतरित हुए हैं।

शिष्य गुरु को क्या दे सकता है? शिष्य तो स्वयं ही
गुरु के सामने याचक होता है। वह उनका धन न लूटना चाहता
हो तो उनके नाम का प्रताप लूटना चाहता होगा। वह उनके
वर्चस्व को न लूटना चाहता हो तो उनके ज्ञान को लूटना चाहता
होगा और गुरु भी अज्ञानी सा बन अपने को लुटाता चला
जाता है क्योंकि वह तो है ही निखिल!

सबमें रमते हुए भी उसका चित्त नहीं रमा हुआ है
अपने शिष्यों के अतिरिक्त किसी अन्य भावभूमि में। उसे कुछ
स्पृहा भी नहीं है अपने शिष्यों से किसी बात की।

न वह यह दायित्व लाद गया है कि तुम मेरे नाम का
प्रचार करो ही या मेरे ज्ञान को फैलाओ ही लेकिन जिस बात
की गुरुदेव ने सदैव स्पृहा की वह मात्र इतनी ही है कि उनका
शिष्य विषाद युक्त न रहे और न वह उनसे किसी रूप में छल
करे– यही उनकी साधना उपासना आराधना या जो भी संज्ञा
दें, सभी का सर्वोच्च रूप है। **ऐसा करने पर ही जीवन में वह वसंत स्थायी हो सकता है जो वसंत स्वयं में कोई विलास न होकर दूसरा रूप है नित्य नवसृजन के प्रतीक परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानंद जी का!**

अहं पंचभूतान्य पञ्चभूतानि

(मैं ही पांच तत्वों का सम्मिलित रूप और पांच तत्वों का स्वतंत्र रूप महाभूत भी हूं।)

21.6.2000
या किसी गुरुवार से

जीवन के समस्त विकारों को समाप्त करने में समर्थ

पंच तत्व साधना

किसी भी साधना को सम्पन्न करने का हमारे पास बस एक ही माध्यम है- पंच तत्वों से सृजित हमारा यह शरीर और किसी भी साधना में जो सबसे बड़ी बाधा हो सकती है वह भी है- हमारा ही यह शरीर! क्या मूक हैं हमारे शास्त्र इस मौलिक विसंगति के प्रति? क्या यह सम्भव है कि प्राचीन काल में गुरुजन का ध्यान इस ओर न आकृष्ट हुआ हो . . .

साधना एक ऐसा शब्द है जिसे सुन कर या पढ़कर किसी का भी मन सहज ही इसके प्रति आकृष्ट हो जाता है क्योंकि जो बात इसके मर्म में छिपी है वह मात्र यही है कि व्यक्ति को यह विश्वास हो जाता है वह अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकता हूं।

उसे वह उपाय या माध्यम मिल गया लगता है जिससे उसके मनोरथ पूर्ण हो गए लगने लग जाते हैं, किन्तु साधना से पहले एक अन्य शब्द या भाव का अस्तित्व है और वह है- संस्कार।

यह संस्कार ही होते हैं जो किसी व्यक्ति को प्रेरित करते हैं कि वह साधना के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण को अपने मन में स्थान दे।

यह निश्चित तथ्य है कि किसी भी व्यक्ति के जीवन निर्माण में संस्कारों की एक बहुत बड़ी भूमिका होती है और यही कारण है कि भारतीय जीवन शैली में जीवन को षोडश संस्कारों- पुंसवन से लेकर अन्त्येष्टि- के मध्य परिनियमित करने की युक्ति निर्मित की गयी है किन्तु संस्कार का अर्थ केवल किन्हीं कर्मकांडों का पालन न होकर उससे कहीं अधिक विस्तृत होता है।

बचपन से शिशु के मन पर अपने आस-पास के परिवेश का जो प्रभाव निरंतर पड़ता है वास्तव में वही उसके संस्कार निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवेश के अभाव की पूर्ति कर्मकांड कदापि नहीं कर सकता किन्तु कोई आश्वासन सा अवश्य दे सकता है और जीवन में किसी सकारात्मक आश्वासन का मिल जाना भी किसी उपलब्धि से न्यून नहीं होता।

व्यक्ति का जो प्रारब्ध होता है वह तो उसे ही सहन करना पड़ता है किन्तु श्री सद्गुरुदेव की उपस्थित में वह उस में केवल एक दृष्टा भर बन जाता है, भोक्ता नहीं।

वस्तुत: संस्कारों का अभ्युदय श्री सद्गुरुदेव की कृपा से ही हो सकता है क्योंकि संस्कार का वास्तविक अर्थ है शोधन और प्राचीन काल में जहां गुरुजन अपने शिष्य के अन्तर्मन का शोधन करते थे वहीं उसकी पंचभूतात्मक देह का भी परिशोधन करते थे।

षोडश संस्कारों में से एक संस्कार होता है- उपनयन संस्कार। आज भी यह संस्कार समाज में उल्लास पूर्वक, समारोह के साथ सम्पन्न किया जाता है किन्तु जो इसका मूल भाव है, क्या उसका स्मरण शेष रह गया है?

उपनयन का केवल एक अर्थ ब्रह्मचारी किशोर को आचार्य के समीप ले जाना या जनेऊ भर पहना देना ही नहीं

सही अर्थों में यह केवल पंच तत्व साधना ही नहीं वरन् उपनयन साधना है किसी भी शिष्य के ज्ञान चक्षुओं को उन्मीलित कर देने में समर्थ और इसी रूप में है यह एक सशक्त एवं पूर्ण प्रामाणिक गुरु साधना भी।

होता वरन् यह भी होता है कि **अब गुरु अपने शिष्य को उप अर्थात् सहायक, नयन अर्थात् नेत्रों से युक्त करने की क्रिया सम्पन्न करेंगे** अथवा दूसरे शब्दों में कहें तो वे उसे ज्ञान चक्षुओं से युक्त करेंगे।

किन्तु जिस प्रकार से दूषित घड़े में शुद्ध जल भरने का कोई अर्थ नहीं होता उसी प्रकार से अशुद्ध देह में भी ज्ञान की कोई भावभूमि स्पष्ट नहीं की जा सकती और शास्त्र प्रमाण है कि प्राचीन काल में जब ब्रह्मचारी उपनयन हेतु अपने गुरु के समीप जाता था तो वे उसे तीन दिन तक अपने साहचर्य में रखने के बाद विदा दे देते थे।

तीन दिन के पश्चात गुरु अपने शिष्य या उस ब्रह्मचारी को क्यों विदा दे देते थे? अथवा उसे क्या ज्ञान देकर विदा करते थे? इसका आज कोई विवेचन नहीं मिलता।

पृथ्वी
जल
संसार
वायु
अग्नि
आकाश

उस अवसर पर गुरु अपने शिष्य को जो ज्ञान देकर एक अल्प अवधि के लिए विदा करते थे वस्तुतः वह ज्ञान साधनात्मक होता था। उस ज्ञान के माध्यम से अपने पंचभूतात्मक शरीर को शोधित करता हुआ शिष्य जब पुनः कुछ समय के बाद गुरु के समक्ष उपस्थित होता था तब गुरु अत्यंत प्रसन्नता के साथ उसे ज्ञान प्रदान करने का क्रम प्रारम्भ करते थे।

हमारा यह पंचभूतात्मक शरीर (जो साधनाओं की आधार भूमि है) उसका निर्माण हुआ है हमारे मातृकुल व पितृकुल के रक्त द्वारा। हमारे पूर्वजों के कृत्यों का एक अंश हमारे भीतर भी विद्यमान रहता है, यह हमारे समाज की एक सुस्थापित मान्यता रही है।

साथ ही साधना के क्षेत्र में इस बात का भी विशेष महत्व माना गया है कि किस व्यक्ति का किस प्रकार के उपार्जित धन के माध्यम से पोषण हुआ है।

इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि इस बात की कोई सुनिश्चितता नहीं कि साधना के लिए हमारा शरीर पूर्ण रूप से शोधित अवस्था में है ही और जब तक शरीर ही नहीं शोधित हुआ है तब तक किसी सफलता की आशा करना व्यर्थ है।

दूसरी ओर पंचभूतात्मक प्रकृति का अर्थात् भूमि, वायु, जल, अग्नि एवं आकाश तत्व से निर्मित होने के कारण यह एक अपरिहार्य स्थिति बन जाती है कि इन पंच तत्वों से सम्बन्धित लक्षण भी व्यक्ति के शरीर में होंगे और यही कारण है मनुष्य में काम, क्रोध, मद, लोभ व मोह जैसे दुर्गुणों के होने का भी।

गुरु परम्परा में सुरक्षित *'तत्वानुक्रम-मीमांसा'* ग्रंथ के अनुसार प्रत्येक तत्व अपने में एक ओर से जहां सकारात्मक होता है वहीं दूसरी ओर से नकारात्मक भी होता है जिस प्रकार से अग्नि एक ओर जहां उष्मा देने में समर्थ होती है तो वहीं दूसरी ओर भस्म कर देने में भी।

किसी भी व्यक्ति के शरीर में उपस्थित इन पंच तत्वों में से जहां भूमि तत्व कारण बनता है मोह का तो वहीं जल तत्व कारण होता है उसके अंदर काम का, अग्नि तत्व के कारण होता है क्रोध तो वहीं वायु तत्व के कारण होता है लोभ तथा आकाश तत्व के कारण उत्पन्न होता है मद!

भूमि तत्व का गुण होता है गुरुत्वाकर्षण (gravity), इसी आकर्षण के कारण ही व्यक्ति धरा से लग कर चलने में समर्थ होता है, मोह भी एक प्रकार का आकर्षण होता है जो अपनी संकीर्णता में व्यक्ति को क्षुद्र आकर्षणों में बांधे उसे कभी भी उन्मुक्त नहीं होने देता किन्तु जहां यही तत्व अपनी विशदता में अवस्थित हो जाता है तो यही बन जाता है ममत्व अर्थात् जहां सभी आत्मवत् ही लगने लग जाते हैं।

जल तत्व का सहज गुण होता है एक प्रवाहशीलता और काम भी स्वयं में एक अनियन्त्रित प्रवाह होता है। जिस प्रकार से जल जिधर ढलाव पाता है उसी ओर लुढ़क जाता है उसी प्रकार से मनुष्य के मन का यह भाव (काम) भी बिना मर्यादा का ध्यान किए किसी भी ओर प्रवाहित हो सकता है किन्तु अपने विशद रूप में संशोधित व परिवर्धित होकर यही तत्व बन जाता है प्रेम! ऐसा निश्छल भाव जो मानवता

विकारों की जड़ मूल से समाप्ति सम्भव ही नहीं, यह केवल संशोधित हो सकती है क्षुद्र अर्थों से पृथक हो सकती है और इसी रूप में सहायक सिद्ध होती है यह साधना- पंचतत्व साधना।

का सर्वोच्च भाव होता है।

अग्नि तत्व का सामान्य गुण होताहै किसी भी वस्तु को जला कर भस्म कर देना और यही किसी भी व्यक्ति का भाव बन जाता है जिस क्षण वह क्रोधयुक्त होता है, दूसरी ओर जिस प्रकार से अग्नि अपने नियन्त्रित रूप में सुखद उष्मा-प्रदायक गुण से भी युक्त होती है उसी प्रकार से क्रोध भी अपने नियन्त्रित रूप में परिवर्तित हो जाता है तेजस्विता में। तेजस्विता ही वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति ऐसे अनेक कार्य कर जाता है जो अनेकानेक हेतु कल्याणप्रद बन जाते हैं।

वायु तत्व का सहज गुण होता है इधर से उधर विचरण करते रहना। स्वच्छन्द तो जल का प्रवाह भी होता है किन्तु वायु का प्रवाह तो मानो किसी भी बंधन को स्वीकार नहीं कर पाता है। जिस प्रकार से वायु का प्रवाह सर्वथा उन्मुक्त होता है उसी प्रकार से मनुष्य के मन की वायु सदृश्य एक प्रवृत्ति होती है उसका लोभ जिसमें उलझ कर मनुष्य का मन कभी एक वस्तु में आकर्षण को अनुभव करता हुआ उसे हस्तगत करने की चेष्टा करता है तो कभी किसी दूसरे में। लोभ की पूर्ति हो जाने पर मन में प्रमाद का जन्म होता है और पूर्ति न होने पर कुंठा का तथा ये दोनों ही स्थितियां श्रेयस्कर तो नहीं कही जा सकती हैं।

लोभ जहां गुरु संस्पर्श से अपनी परिशोधित अवस्था में आ जाता है वहां वह लालसा में बदल जाता है।लोभ व लालसा ये दोनों ही शब्द यद्यपि सुनने में समानार्थक प्रतीत होते हैं किन्तु साधना के क्षेत्र में लालसा उस अवस्था को कहा गया है जहां साधक उन्मनी (मन के आधिपत्य से मुक्त होना) अवस्था में आकर अपने इष्ट से साक्षात्कार करने की कामना को मन में स्थान देता हुआ शनैःशनैः सांसारिक प्रपंचों से विलग होना प्रारम्भ कर देता है।

और सर्वोपरि मानव शरीर में जो सबसे संवेदनशील भावभूमि से युक्त तत्व है, जिस तत्व के आधार पर निर्मित होता है उसका सूक्ष्म शरीर, उसकी चेतना, उसका आध्यात्मिक विकास-वह होता है **आकाश तत्व** जो अपने सहज गुण में एक विशालता का परिचायक होता है और यही कारण बनता है किसी भी व्यक्ति के शरीर में उसके अहंकार या मद का।

अहंकार से मद की उत्पत्ति होती है और मद से बड़ा दुर्गुण सम्भवतः कोई दूसरा नहीं हो सकता क्योंकि मद व्यक्ति के विवेक को इस प्रकार से ग्रसित कर लेता है कि व्यक्ति स्वयं अपने ही हित के विषय में सोचने में असमर्थ हो जाता है। मद से जुड़ा शब्द है मदांधता और वास्तव में मद व्यक्ति की दृष्टि को छीन लेता है।

यहां एक बात स्पष्ट करनी आवश्यक है कि जन्म से मनुष्य के शरीर में प्रत्येक तत्व अपनी उदात्तता में न होकर सुप्त अवस्था या lower phase में होता है। उसका विकास गुरु संस्पर्श से सम्भव हो पाता है और इसी विकास के क्रम में आने के पश्चात व्यक्ति के अंदर का आकाश तत्व अपने अहं के भाव से परिवर्तित होता हुआ वर्चस्व के भाव में अभिव्यक्त होने लग जाता है।

वर्चस्व अर्थात् क्षमतावान, पौरुषवान होते हुए अपने लक्ष्य को पूर्ण करने की चेष्टा में संलग्न हो जाने का भाव और इसी कारणवश पिछले वर्ष के प्रारम्भ में दिनांक १.१.१९९९ को जो दीक्षा पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रदान की थी वह थी-ब्रह्म वर्चस्व दीक्षा। **'आपके पत्र' के अन्तर्गत नित्य ही पत्रिका कार्यालय में इस विषय से सम्बन्धित अनेक पत्र प्राप्त होते हैं कि साधकों के साधना क्रम में उन्हें किस प्रकार से अनेक रूप में बाधाएं आ रही हैं।** इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि क्या हो वह समाधान जिससे साधना के मार्ग में आने वाली इस प्रकार की बाधाओं का निराकरण किया जा सके?

इस प्रकार की स्थितियों पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए यहां जिस पंच तत्व साधना की प्रस्तुति की जा रही है वह गुरु परम्परा में सुरक्षित व अप्रकाशित साधना विधि रही है क्योंकि तत्व सम्बन्धी साधनाएं इतनी गूढ़ मानी गयी है कि उनको केवल अधिकारी पात्र को प्रदान करने का विधान रहा है।

यह अप्रैल माह है और इसी माह में घटित होता पूज्यपाद गुरुदेव के अवतरण दिवस २१ अप्रैल का पावन अवसर। इस विशेष अवसर पर गुरु परम्परा में सुरक्षित रही इस साधना को प्रस्तुत करते हुए (विशेषकर महाविद्या साधनाओं एवं गुरु साधना में संलग्न साधकों हेतु) हमें प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है क्योंकि साधनाएं स्वयं में ज्ञान व गुरु का दूसरा रूप होती है और इस अवसर पर पूज्यपाद गुरुदेव की ओर से इस प्रकार की साधना का सूत्र प्राप्त होना उनकी ही अनुकम्पा का एक रूप है।

गुरु साधना का केवल एक रूप गुरु मंत्र का जप तक ही सीमित नहीं होता वरन् वे सभी साधनाएं जो साधक के जीवन की न्यूनताओं को दूर कर उसे गुरुत्व के भाव को आत्मसात कराने में सहायक हों, गुरु साधनाएं ही होती है। आवश्यकता है तो एक मानसिक रूप से स्वस्थ व गंभीर विवेचन की। प्रस्तुत साधना उस उच्चत्व कोटि की साधना है जिस कोटि की साधनाएं सिद्धाश्रम में सम्पन्न करने का विधान रहा है अतः साधना के भाव को गंभीरता एवं आस्था के साथ ग्रहण करें।

साधना विधान

यह साधना 21.6.2000 अथवा **किसी भी गुरुवार** से प्रारम्भ की जा सकती है। इसके लिये साधक के पास ताम्र पत्र पर अंकित एवं प्राण प्रतिष्ठित **गुरु सायुज्य यंत्र** होना आवश्यक है साथ ही उसके पास मंत्र जप हेतु शुद्ध **स्फटिक की माला** व **तीन लघु नारियल** भी होने चाहिए। समस्त साधना सामग्री का पहले किसी साधना में प्रयोग न किया गया हो।

आसन व वस्त्रों का रंग श्वेत हो तथा दिशा के निर्धारण के रूप में साधक का मुख उत्तर की ओर रहे। यह ग्यारह दिवसीय रात्रिकालीन साधना है जिसे साधक दस बजे के आस-पास प्रारम्भ करे। मंत्र जप के काल में शुद्ध घी का दीपक लगा होना चाहिए।

साधक स्नान आदि से शुद्ध होकर साधना प्रारम्भ करे तथा जिस रूप में नित्य संक्षिप्त गुरु पूजन करते हों उस विधि से सम्पन्न कर निम्न प्रकार से न्यास क्रम सम्पन्न करें।

ऋष्यादि न्यास:

शिरसि चतुर्मुखाय ऋषये नमः
(दाहें हाथ की उंगलियों से सिर का स्पर्श करते हुए उच्चरित करें)

मुखे देवी गायत्रीच्छन्दसे नमः
(मुख का स्पर्श करते हुए उच्चरित करें)

हृदि दक्षिणा मूर्तये देवतायै नमः
(हृदय का स्पर्श करते हुए उच्चरित करें)

कर न्यास:

ॐ आं ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः
(दोनों अंगूठों को परस्पर मिलाते हुए)

ॐ ईं ॐ तर्जनीभ्यां स्वाहा
(दोनों तर्जनियों को परस्पर मिलाते हुए)

ॐ ऊं ॐ मध्यमाभ्यां वषट्
(दोनों मध्यमाओं को परस्पर मिलाते हुए)

ॐ ऐं ॐ अनामिकाभ्यां हुं
(दोनों अनामिकाओं को परस्पर मिलाते हुए)

ॐ औं ॐ कनिष्ठकाभ्यां वौषट्
(दोनों कनिष्ठिकाओं को परस्पर मिलाते हुए)

ॐ अः ॐ करतल करपृष्ठाभ्यां फट्
(दोनों हथेलियों के पृष्ठ भाग को परस्पर मिलाते हुए)

हृदयादि न्यास:

ॐ आं ॐ हृदयाय नमः (हृदय पर दाहें हथेली रखते हुए बोलें)

ॐ ईं ॐ शिरसे स्वाहा (सिर का दाहें हाथ से स्पर्श करते हुए)

ॐ ऊं ॐ शिखायै वषट् (शिखा पर बायां हाथ रखते हुए)

ॐ ऐं ॐ कवचाय हुं (दोनों कंधों का स्पर्श करते हुए)

ॐ औं ॐ नेत्र त्रयाय वौषट्
(दोनों नेत्र व आज्ञा चक्र का दोनों हाथ की उंगलियों से एक साथ स्पर्श करें)

ॐ अः ॐ अस्त्राय फट्
(दाहिने हाथ की उंगलियों से चुटकी बजाते हुए सिर के चारों ओर घुमाएं)

इसके पश्चात यंत्र व तीनों लघु नारियलों का श्री सद्गुरुदेव परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी, पारमेष्ठि गुरुदेव परमहंस स्वामी सच्चिदानन्द जी व आधगुरु भगवान शिवजी के रूप में कुंकुम, अक्षत व पुष्प से संक्षिप्त पूजन कर निम्न प्रकार से ध्यान उच्चरित करें—

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्द मूर्तये
निष्प्रपंचाय शांताय निरालम्बाय तेजसे

पूज्यपाद गुरुदेव से अपने अन्न, रक्त व पितृ दोष के परिहार की प्रार्थना करते हुए निम्न मंत्र की ५ माला जप करें—

मंत्र:

॥ ॐ अं तत्ब्रह्मणे हं सद्गुरु देवेभ्यो नमः ॥

Om Am Tat-brahmanae Ham Sadguru Devebhyo Namah

मंत्र जप के पश्चात रात्रि शयन साधना स्थल के समीप ही करें। इन ग्यारह दिनों में भूमि-शयन करने व पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करना अनिवार्य है। भोजन यथा सम्भव केवल एक बार और सात्विक रूप में ग्रहण करें। दिन में साधक अपने कार्य पर जाने, व्यापार आदि करने के लिए स्वतंत्र है। नित्य मंत्र जप यथासम्भव निश्चित समय पर ही करें। ग्यारह दिनों के पश्चात यंत्र को किसी नदी या किसी स्वच्छ सरोवर में विसर्जित कर दें।

साधक को विकारों से निर्मल करते हुए यह कायाकल्प-साधना के समतुल्य प्रभावों से युक्त साधना भी है।

.....जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विजः उच्यते-

जन्म से तो सभी एक समान मल-मूत्र के मध्य से होकर आ रहे हैं अतः कौन श्रेष्ठ और कौन निम्न? यह तो गुरु का संस्पर्श होता है जो व्यक्ति को कुछ से कुछ बना देता है।

साधना सामग्री पैकेट — 390/-

प्रभु खिंचे हुए, बंधे हुए चले आयेंगे

गुरु आह्वान स्तोत्र

स्तोत्र स्वयं में मंत्र स्वरूप होते हैं-इस तथ्य से प्रत्येक साधक परिचित है किंतु मंत्रों की अपेक्षा एक अन्य विशिष्टता होती है किसी भी स्तोत्र में कि जहां मंत्र वर्णों का विशिष्ट संयोजन होता है वहीं किसी भी स्तोत्र में एक लयबद्धता भी होती है तथा इसी लयबद्धता के कारण यह सहज स्वाभाविक हो जाता है कि साधक के हृदय के भाव पूर्णता से प्रस्फुटित हो सकें। हृदय के भाव प्रस्फुटित हो सकें, यही तो समस्त साधनाओं का भी मर्म है। मात्र स्तोत्र पाठ से ही जीवन में कई प्रकार की अनुकूलताएं प्राप्त हो जाती हैं।

यह माह है पूज्यपाद गुरुदेव के अवतरण का माह और किसी भी शिष्य के लिए यह सम्पूर्ण माह उसी प्रकार से धन्यता और पवित्रता का माह है ज्यों किसी शिव-भक्त के लिए श्रावण का माह होता है।

यह सम्पूर्ण माह गुरु साधनाओं को सम्पन्न करने का माह है और जहां गुरुदेव की साधना की जाए वहां यह आवश्यक है कि उनका सम्पूर्ण गरिमा व पवित्रता के साथ आह्वान भी किया जाए। गुरु शब्द के साथ देव शब्द जोड़ने का अर्थ ही यही है कि गुरुदेव, व्यक्ति की संज्ञा से आगे बढ़ देवत्व की विशिष्टतम स्थिति होते हैं।

शिष्यगण, पूज्यपाद गुरुदेव का आह्वान यथोचित विधि से कर सकें, इस हेतु इस मास में जिस गुरु आह्वान-स्तोत्र की प्रस्तुति की जा रही है वह एक दुर्लभ स्तोत्र है। इस स्तवन के पाठ अथवा श्रवण मात्र से गुरुदेव सूक्ष्म रूप में उपस्थित होते ही हैं, यह एक अनुभव जन्य प्रमाण है अनेकानेक साधकों व शिष्यों का अतः इस स्तवन का पाठ अत्यंत भावविह्वलता, शुद्धता एवं विगलित कंठ से करें।

प्रयोग-विधि : जब कभी भी इस स्तवन का पाठ करने का भाव मन में उमड़े तब शुद्ध वस्त्र धारण कर उत्तरमुख हो आसन पर बैठें, वातावरण को धूप अगरबत्ती के द्वारा सुगंधमय कर लें तथा अपने समक्ष किसी बाजोट पर वस्त्र बिछाकर पुष्प की पंखुड़ियों को गुरुदेव हेतु आसन के रूप में स्थापित करें।

सामूहिक अथवा व्यक्तिगत गुरु-पूजन/गुरु साधना के अवसर पर इस स्तोत्र का पाठ गुरुदेव का यथोचित विधि से पूजन करने के उपरान्त करें, मध्य में अथवा प्रारम्भ में नहीं– ऐसा सिद्धाश्रम गुरु-पूजन क्रम में उल्लिखित है।

मात्र परीक्षण के रूप में, किसी कौतूहल या किसी भी प्रकार से अगरिमामय रूप में इस स्तवन का पाठ करना सर्वथा वर्जित है। आगे इस स्तवन को जिस प्रकार से पूज्यपाद गुरुदेव ने स्पष्ट किया है, उसी रूप में प्रकाशित किया जा रहा है–

पूर्ण सतान्यै परिपूर्ण रूपं
गुरुर्वै सतान्यं दीर्घो वदान्यम् ।
आविर्वतां पूर्ण मदैव पुण्यं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥१॥

त्वमेव माता च. . . (श्लोक के १६ पूरा पढ़ें)

न जानामि योगं न जानामि ध्यानं
न मंत्रं न तंत्रं योगं क्रियान्वै ।
न जानामि पूर्णं न देहं न पूर्वं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥२॥

त्वमेव माता च. . . .

अनाथो दरिद्रो जरा रोग युक्तो
महाक्षीण दीनं सदा जाड्य वक्त्रः ।
विपत्ति प्रविष्टं सदाऽहं भजामि
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥३॥

त्वमेव माता च. . . .

त्वं मातृ रूपं पितृ स्वरूपं
आत्म स्वरूपं प्राण स्वरूपं ।
चैतन्य रूपं देवं चिदन्त्रं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥४॥

त्वमेव माता च. . . .

त्वं नाथ पूर्णं त्वं देव पूर्णं
आत्म च पूर्णं ज्ञानं च पूर्णम् ।
अहं त्वां प्रपद्ये सदाऽहं भजामि
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥५॥

त्वमेव माता च. . . .

मम अश्रु अर्घ्यं पुष्पं प्रसूनं
देहं च पुष्पं शरण्यं त्वमेवम् ।
जीवोऽ वदां पूर्ण मदैव रूपं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥६॥

त्वमेव माता च. . . .

आवाहयामि आवाहयामि
शरण्यं शरण्यं सदाहं शरण्यं ।
त्वं नाथ मेवं प्रपद्ये प्रसन्नं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥७॥

त्वमेव माता च. . . .

न तातो न माता न बन्धुर्न भ्राता
न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता ।
न जाया न वित्तं न वृत्तिर्ममैवं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥८॥

त्वमेव माता च. . .

आवध्य रूपं अश्रु प्रवाहं
धीयां प्रपद्ये हृदयं वदान्ये ।
देहं त्वमेवं शरण्यं त्वमेवं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥९॥

त्वमेव माता च. . . .

गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ।
एको हि नाथं एको हि शब्दं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥१०॥

त्वमेव माता च. . . .

कान्तां न पूर्वं वदान्यै वदान्यं
कोऽहं सदान्यै सदाहं वदामि ।
न पूर्वं पतिर्वै पतिर्वै सदाऽहं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥११॥

त्वमेव माता च. . . .

न प्राणो वदार्वै न देहं नयाऽहै
न नेत्रं न पूर्वं सदाऽहं वदान्यै ।
तुच्छं वदां पूर्वं मदैव तुल्यं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥१२॥

त्वमेव माता च. . . .

पूर्वो न पूर्वं न ज्ञानं न तुल्यं
न नारि नरं वै पतिर्वै न पत्न्यम् ।
को कत् कदा कुत्र कदैव तुल्यं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥१३॥

त्वमेव माता च. . . .

गुरुर्वै गतान्यं गुरुर्वै शतान्यं
गुरुर्वै वदान्यं गुरुर्वै कथान्यम् ।
गुरुमेव रूपं सदाऽहं भजामि
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥१४॥

त्वमेव माता च. . . .

आत्रं वतां अश्रु वदैव रूपं
ज्ञानं वदान्यै परिपूर्ण नित्यम् ।
गुरुर्वै व्रजाहं गुरुर्वै भजाहं
गुरुर्वै शरण्यं गुरुर्वै शरण्यम् ॥१५॥

त्वमेव माता च. . . .

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥१६॥

त्वमेव माता च. . . .

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त, पूर्ण स्वरूप वाले निश्चित रूप से जो सत् चित् स्वरूप हैं, अखण्ड स्वरूप हैं, संसार में आविर्भूत होने वाले सबसे अधिक पुण्यवान् हैं, ऐसे दिव्य गुणों से परिपूर्ण गुरु चरणों की मैं शरण ग्रहण करता हूं ...॥१॥

योग क्या है, मैं नहीं जानता हूं, न मैं ध्यान को जानता हूं, न मंत्र-तंत्र आदि क्रियाओं को ही जान पा रहा हूं। पूर्ण शक्ति स्वरूप ब्रह्म शक्ति को भी नहीं जानता हूं। इस शरीर के पूर्व और पश्चात की गति को भी नहीं जानता हूं। केवल मैं शरणागत हूं, यही मेरी एकमात्र चेतना है ...॥२॥

मैं अनाथ और दरिद्र हूं, जरा और रोग से ग्रस्त हूं, मैं बिल्कुल आश्रयहीन हूं तथा स्पष्ट रूप से बोल भी नहीं पाता हूं, निरन्तर विपत्तिग्रस्त हूं। आपकी आराधना करता हूं, हे गुरुदेव! आपकी शरणागत हूं, आप मेरी रक्षा करें ...॥३॥

हे गुरुदेव! आप ही मेरे माता, पिता, आत्मा और प्राण हैं। आप चैतन्य स्वरूप हैं, देवाधिदेव हैं। मैं सदैव आपकी शरणागत हूं, आप मेरी रक्षा करें ...॥४॥

हे गुरुदेव! आप पूर्ण स्वरूप हैं, देव स्वरूप हैं, आत्म स्वरूप एवं ज्ञानमय हैं, चैतन्य स्वरूप एवं दिव्य चेतनामय हैं। मैं सदैव आपकी शरणागत हूं, आप मेरी रक्षा करें ...॥५॥

हे प्रभु! मेरे अश्रुओं का अर्घ्य आपको अर्पित है, यह देह ही पुष्प है, आपके शरणागत हूं। बारम्बार देह धारण करके पूर्णता प्राप्त कर सकूं, क्योंकि मैं आपके चरण शरण हूं ...॥६॥

हे प्रभु! आप मेरे हृदय में स्थापित हों, आपका आवाहन करता हूं। हे नाथ! मेरी स्थिति से आप परिचित हैं, जीवन में मैं प्रसन्नता चाहता हूं, मुझे अपनी शरण में ले लें ...॥७॥

माता, पिता, भाई तथा कोई भी सम्बन्धी इस संसार में मेरे नहीं हैं। पुत्र, पुत्री, पति तथा सेवक आदि भी नहीं हैं। पत्नी, धन या जीवनयापन के किसी भी साधन को मैं अपना नहीं मानता हूं। हे गुरुदेव! मैं आपके शरणागत हूं ...॥८॥

अनवरत प्रवाहमान अश्रु ही मेरे हृदय में स्थापित हैं, और ये ही आप के विमल स्वरूप का प्रमाण है। यह मेरा शरीर भी आप का ही है, जिसे सेवा के लिये चाहें तो आप उपयोग करें। पुन: पुन: निवेदन है कि मैं आपकी शरण में ही रहूं ...॥९॥

मैं आपकी ही शरणागत हूं, आपके ही अधीन हूं, आप ही मेरे रक्षक हैं, पालक हैं, आपही मेरे एकमात्र आराध्य हैं, स्तुत्य हैं। आप सदा मुझे अपनी शरण में रखे रहें, ऐसी प्रार्थना करता हूं ...॥१०॥

कोई भी वस्तु इस संसार में ऐसी नहीं है, जिसकी मुझे आपके समक्ष कामना हो। मैं कौन हूं, यह भी नहीं जानता हूं। इससे पूर्व मेरा कोई स्वामी था भी या नहीं, मैं नहीं जानता हूं। मैं तो बस जानता हूं कि आप ही मेरे सर्वस्व हैं, और आपकी शरणागति की ही कामना करता हूं ...॥११॥

यह प्राण, देह तथा नेत्र आदि इन्द्रियां जिन्हें मैं अपना समझता था – ये अनित्य और तुच्छ हैं, नाशवान हैं, संसार में केवल आप ही सारभूत तत्व हैं। प्रभु! मैं आपकी ही शरण में हूं ...॥१२॥

सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व का मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है। ये नर, नारी, पत्नी और पति का भाव कैसे हुआ – यह भी नहीं जानता, मैं कौन हूं, कब से इस संसार चक्र में हूं, कब तक ऐसा चलता रहेगा, यह भी नहीं जानता, केवल आपकी शरणागत हूं, यही जानता हूं ...॥१३॥

गुरु ही गति है, गुरु ही शक्ति है, गुरु ही स्तुति योग्य है, गुरु ही कथा योग्य है, गुरु ही दर्शन योग्य है, उनका ही मैं सदा स्मरण करता हूं, उन्हीं की शरणागत चाहता हूं ...॥१४॥

मैं आर्त हूं, आंखों में अश्रु हैं, मैं प्रार्थना कर रहा हूं कि आपके स्वरूप का मुझे ज्ञान हो, मैं पूर्णता प्राप्त करूं, गुरु का ही भजन करूं, और एकमात्र उनकी शरण में रहूं ...॥१५॥

गुरुदेव! आप ही माता, पिता, बन्धु, सखा, विद्या और धन आपसे अलग न मेरा कोई भाव है और न मैं चाहता हूं, इसी रूप में आप मुझे पूर्णता प्रदान करें। हे प्रभु! आप ही मेरे सर्वस्व हैं, सर्वस्व हैं ...॥१६॥

सिद्धाश्रम प्रणीत यह स्तोत्र, मात्र एक स्तवन पर नहीं है। यह स्वयं में पूज्यपाद सद्गुरुदेव को सूक्ष्म रूप में उपस्थित कर लेने का प्राणों से किया गया एक आह्वान है, अत: इसका पठन-पाठन पूर्ण मर्यादा से किया जाना आवश्यक है। यूं भी कभी मस्ती में, बिस्तर में लेटे-लेटे, रास्ते चलते, बाथरूम में नहाते समय इसका उच्चारण किसी गीत की भांति करना अभद्र है और ऐसा करना विपरीत फलदायक भी हो सकता है। शिष्यगण इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखें।

सहज सहज सब कोई कहें,
सहज न चीन्हें कोई

निखिलं मधुरं, ज्ञानं निखिलं,
योगं निखिलम् परमं निखिलम्

निखिल योग

सहजता ही जीवन है

– योग, कुण्डलिनी जागरण के बाद आज तीव्रता से लोकप्रियता प्राप्त कर रहा शब्द है– सहज योग। क्या है इस शब्द या शब्द से भी पृथक योग की इस शैली का मूल अर्थ? क्या एक उन्मुक्त जीवन जीने की कामना? क्या एक स्वछन्दता पाने की लालसा? क्या अपने व्यवहारों को आवरण देने की इच्छा? समाज के नियमों से विद्रोह अथवा . . .

एक कथा है . . . एक पिता-पुत्र, पशुओं की किसी हाट में गए और वहां से उन्होंने बोझ ढोने के लिए एक गधा खरीदा। गधे को लेकर वे दोनों पैदल ही अपने गांव की ओर चल पड़े। रास्ते में लोगों ने उन्हें देखा और कहने लगे - *'कैसे मूर्ख लोग हैं ये! गधा पास में है और पैदल चल रहे हैं।'* जब लोगों के ताने बढ़ गए तो पिता ने पुत्र को गधे पर बैठा दिया। कुछ दूर चलने पर लोगों ने फिर ताना कसा- *'देखो तो जरा! बाप बेचारा पैदल चल रहा है, लड़का गधे पर बैठा है, बड़ों की तो इज्जत का जमाना ही नहीं रह गया।'* जब लड़के से ज्यादा देर ताने नहीं सहे गए तो उसने खुद उतर कर अपने पिता को बैठा दिया। पिता के बैठने पर, कुछ ही देर बाद यह टिप्पणी सामने आयी *'बेचारा कोमल बच्चा तो पैदल चल रहा है, ये तो पके पकाए हैं, क्या ये पैदल नहीं चल सकते? तभी तो आज बुजुर्गों की कोई इज्जत नहीं रह गयी है।'* खीझ कर पिता-पुत्र दोनों ने तय किया कि दोनों ही गधे पर बैठ जाते हैं, देखें अब कोई क्या कह सकेगा, लेकिन थोड़ी दूर चलते ही . . . *'इंसान में इंसानियत लगता है मर गयी है, एक अकेली जान गधे पर देखो दो-दो लोग कैसे लदे बैठे हैं।'* यह व्यंग्य सामने आया!

कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति कुछ भी क्यों न करे, अपनी ओर से अच्छा से अच्छा क्यों न करे उसे आलोचना, टिप्पणी, व्यंग्य, उलाहने ताने सुनने पड़ ही जाते हैं। निर्विवाद रूप से चलना शायद ही किसी के लिए सम्भव हो पाता हो और व्यक्ति की उर्जा का एक बहुत बड़ा भाग, जो कि अन्यथा रचनात्मक कार्यों में व्यतीत होता, वह व्यर्थ के द्वंद्वों से उलझने में नष्ट हो जाता है।

सम्भवत: कोई विरला ही होगा जो यह अनुभव करता हो कि उसकी गति उन्मुक्त है, वह सहज ढंग से अपने जीवन को जी पा रहा है। **प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक ऐकांतिकता या privacy होती है जिसके माध्यम से वह अपने मस्तिष्क व शरीर के थक गए तंतुओं में एक नवीन उर्जा भरने की क्रिया करता है किन्तु क्या ऐसा उसे सुलभ हो पाता है?** ऐकांतिकता या privacy से यहां तात्पर्य किसी एकांत में बने सुसज्जित कमरे से नहीं है। ऐकांतिकता से तात्पर्य है चित्त की ऐकांतिकता क्यों कि यदि मन में विचारों का झंझावात चल रहा हो तो न एकांत में बना कोई सुसज्जित कक्ष सुख देता है न ही मनोरंजन का कोई अन्य साधन। ये सुख के बाह्य साधन हैं और कोई आवश्यक नहीं कि बाह्य साधनों से अन्तर्मन भी सुख की अनुभूति कर सके। दूसरी ओर जब मन से सुख उपजता है तो अपने साथ-साथ सारा संसार हंसता हुआ लगने लग जाता है . . . और ऐसा तब होता है जब जीवन में सहजता होती है– *आप भला तो जग भला!*

सहज योग अपने मूल रूप में है–लय योग! योग का कोई भी रूप क्यों न हो, आवश्यक है साधक को पहले ज्ञान हो लय योग का, क्यों कि लय–योग ही तो है सम्पूर्ण योग शास्त्र का आधार।

जब मन में कोई गुनगुनाहट फूट रही होती है तभी नदी की लहरों में कोई संगीत सुनाई देता है नहीं तो वह पानी का एक प्रवाह बन कर रह जाता है, जब खुद अपने मन में कुछ झूम सा रहा होता है तभी पेड़ पौधों के झूमने में कोई नृत्य दिखाई देता है नहीं तो वे भी बस झाड़-झंखाड़ ही दिखते हैं, जब मन किसी लय में बंधा होता है तभी किसी की हंसी-खिलखिलाहटों में झरने का संगीत सुनाई देता है नहीं तो वे खिलखिलाहटें, कर्ण-कटु बन कर कानों में चुभने लग जाती हैं। सब कुछ व्यर्थ सा, बोझिल और नीरस बन असहज हो जाता है।

सहज कहें या लयबद्ध कहें, कोई अंतर नहीं क्योंकि दोनों एक दूसरे पर आश्रित भाव हैं। जो सहज होगा वह लयबद्ध होगा और लयबद्धता, सहजता के अभाव में आ ही नहीं सकती। जीवन में सहजता लानी है तो पहले लय लानी होगी और **जो शब्द आज बहुप्रचारित हो रहा है-सहज योग, वह भी योग की परिभाषा के अन्तर्गत मूल रूप से लय योग है।**

जिस तरह से योग का परिवर्तन हुआ योगा! और योग का अर्थ सीमित हो गया केवल कुछ आसनों या शारीरिक व्यायाम तक उसी प्रकार से लय योग का सहज योग में परिवर्तन, व्यक्ति का अपनी सुविधा से गढ़ा गया एक शब्द है क्योंकि इस माध्यम से व्यक्ति अपने किसी भी उन्मुक्त आचरण को एक आवरण देने के लिए स्वतंत्र जो हो जाता है!

यद्यपि यह आज की बात नहीं है। यदि यह आज की बात होती तो आज से साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व कबीर को यह कहने की विवशता न होती –

सहज सहज सब कोई कहें, सहज न चीन्हे कोय
जिन सहजे विषया त्यजी, सहज कहीजे सोय

. . . क्या आज तक किसी बच्चे ने अपने मुँह से बोल कर कहा है कि वह बच्चा है और इसीलिए वह अबोध हरकतें कर रहा है! बच्चे को तो इस बात का बोध भी नहीं होता कि वह बच्चा है, वह अपने ही आनंद में लीन रहता है। इसी प्रकार से जो लय से तादात्म्य कर चुके होते हैं वे भी बिना कुछ कहे, सहजता के गुणों से भर जाते हैं। एक तरंग आयी तो रूठ गए, फिर एक तरंग आयी तो मान गए, यही बच्चे का गुण होता है और यही सहजता भी होती है। यही सहज योगी का भी लक्षण होता है। **जो केवल बुद्धि तत्व के साथ रहना जानते हैं, सहज योग का विषय उनके लिए कभी भी ग्राह्य नहीं हो सकता।**

दुर्भाग्य से हम सभी युवा होते हुए जब तक गुरु चरणों तक पहुंचते हैं तब तक जीवन का एक बड़ा भाग बुद्धि तत्व के साथ इस तरह से जी चुके होते हैं कि वह हमारे संस्कारों का एक भाग बन चुकी होती है।

इस अवस्था में यह सम्भव नहीं कि हम शिशुवत सहज रह सकें और न शिशुवत सहज रह कर हम इस कूट-कपट से भरे संसार में रह सकते हैं *किन्तु इसका यह भी तो अर्थ नहीं कि हम आम व्यक्ति की तरह छल-प्रपंच को जीवन मान बैठें, गणित करने को जीवन का लक्ष्य बना लें।*

ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि ऐसा क्या किया जाए कि जिससे मन से लयबद्ध, सहज, गुरु चरणों में शिशुवत् सरल रहते हुए भी संसार के विष और वैमनस्य के मध्य रहा जा सके?

जैसा कि प्रारम्भ में कहा लय, व्यक्ति को कहीं बाहर से नहीं मिल सकती, इसे स्वयं के भीतर से ही उद्भूत करना होता है। प्रत्येक व्यक्ति में मूलभूत रूप से तीन शक्तियां होती हैं–***आत्म शक्ति, प्राण शक्ति एवं इच्छा शक्ति।*** प्रथमतः तो अधिकांश व्यक्तियों में ये तीनों शक्तियां जाग्रत ही नहीं होती हैं और यदि जाग्रत भी हों तो उनमें परस्पर तालमेल नहीं होता है। परस्पर तालमेल का यह अभाव ही व्यक्ति को सदैव उग्र, व्यग्र, पीड़ाग्रस्त और तनावयुक्त बनाए रखता है।

व्यक्ति यह समझ नहीं पाता है कि क्यों उसका चित्त सदैव उद्विग्न बना रहता है, क्यों उसके प्रयास असफल हो जाते हैं और कुंठा में वह लय प्राप्ति के लिए मुख्य रूप से जिन दो साधनों की ओर बढ़ जाता है-सेक्स या नशा, वे उसे और भी अधिक अव्यवस्थित कर जाते हैं क्यों कि इनका प्रभाव क्षणिक जो होता है।

जीवन में विषम स्थितियों को साध लेना साधना है। बाह्य रूप में इस प्रकृति में जो लय है, उसे ही शास्त्रों में अनहद कहा गया है, इस अनहद की स्थिति को जीवन में उतार लेना लय योग का वास्तविक अर्थ है।

लय योग, मुख्य रूप से कुण्डलिनी जागरण से सम्बन्धित विषय रहा है **किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि यह एकमात्र कुण्डलिनी जागरण से सम्बन्धित विषय है अथवा किसी चक्र विशेष से इसका सम्बन्ध है।** जिस प्रकार से

> साबर मंत्रों का रहस्य छिपा होता है एक लय में, इसी कारणवश साबर मंत्र शीघ्र प्रभावशाली सिद्ध होता है लय योग में . . . और यही तो रहस्य है नाथ पंथ के साधकों की अलमस्ती का भी!

कुण्डलिनी जागरण मूल रूप में हठयोग का विषय रहा है उसी प्रकार से लय योग(या आज की परिभाषा में सहज योग) भी हठयोगियों का विषय रहा है। नाथ योगियों का सदैव अलमस्त बने रहना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। जिसने प्रकृति की लय से ही सामंजस्य कर लिया, उसके लिए कौन सी बाधा और कौन सा शोक?

लय योग साधना

साधकगण, लय योग की प्राथमिक भावभूमि से साक्षात्कार कर सकें इस हेतु इसी पंथ से सम्बन्धित एक साधना प्रस्तुत की जा रही है। इच्छुक साधक के पास **'गुरु रहस्य सिद्धि यंत्र'** (जो ताम्र पत्र पर अंकित एवं नवनाथ मंत्रों से चैतन्य हो), एवं नवनाथों के प्रतीक रूप में **'नौ हकीक पत्थर'** होने आवश्यक हैं। साधना में वस्त्रों का रंग सफेद हो तथा दिशा उत्तर रहे। यह ब्रह्म मुहूर्त में की जाने वाली साधना है। सबसे पहले गुरु यंत्र का संक्षिप्त पूजन करें, उस पर चंदन का टीका लगाएं व पुष्प भेंट करें फिर यंत्र के चारों ओर हकीक पत्थर स्थापित कर ऐसा ही समस्त हकीक पत्थरों पर भी पूजन करें। सम्पूर्ण पूजन काल में 'ॐ गुं शं गुं ॐ' मंत्र का मानसिक रूप से जप करते रहें। संक्षिप्त पूजन के उपरान्त निम्न मंत्र का केवल एक बार जप करें –

मंत्र

ॐनमो आदेश, गुरुजी को आदेश। ॐ गुरुजी कहां थे पवन कहां थे पानी, कहां थे नर कहां थे नारी, कहां ब्रह्मा कहां विष्णु कहां शिव की परनामी ।कहां चंद्र थे कहां सूर्य कहां नवलक्ष तारा जब हुई अगम वेद की बानी।ॐ गुरुजी असंख्य युग बरते अलील रहते, उपजे आपो आपना सुभय धाम कमल में विश्राम ।आसन से उपजी मनसा माती जिसने तीन रत्न पैदा किए-ब्रह्मा, विष्णु, महेश। अलख का मेला हुआ, रतन मिल सिद्ध कियो अलील का जाप। माता कुआंरी पिता यती। लोह में काया वज्र में पाणी। अनंत कोटि सिद्धों की मनमानी। झड़े पारा पिवे योगी ।पानी उल्टे पल्टे काया सिद्धों का मार्ग साधक ने पाया। ॐ गुरुजी प्रथम अलील नाम द्वितीये उदक नाम तृतीये तुरे नाम चतुर्थे जल नाम पांचवे पाणी नाम षष्ठे ब्रह्म नाम सप्तमे अचल नाम अष्टमे आब नाम नवमे नीर नाम दशमे वीर्य नाम एकादशे रुद्र नाम द्वादशे जिन्दा पीर बोलिए। ॐ गुरुजी जल जागो थल जागो जागो जलबिम्ब की काया। अलील पुरुषजी तुम जागो शरण तुम्हारी आया। इतनी अलील गायत्री का जो प्राणी सिमरण करे सो प्राणी भवसागर तरे। अलील गायत्री का जप सम्पूर्ण भया। श्री नाथ गुरुजी आदेश आदेश।

किसी भी गुरुवार से प्रारम्भ करके, एक नियत समय पर, यह निरन्तर ग्यारह दिन तक की जाने वाली साधना है। साधना के अंत में समस्त सामग्री को विसर्जित कर दें।

यह नाथ पंथ की वह मूल साधना है जिसे कभी नाथ पंथ के गुरुजन अपने पास आने वाले प्रत्येक शिष्य को सर्वप्रथम सम्पन्न करवाते थे, जिससे शिष्य-साधक तनावमुक्त रहने की कला सीख सके। कैसी भी घोर संकट या मानसिक तनाव की स्थिति क्यों न हो, इस मंत्र का(*जिसे नाथ पंथ में अलील गायत्री की उपमा दी गयी है*) केवल एक बार का उच्चारण व्यक्ति को सहज ही मनोवांछित प्रभाव दे जाता है।

साधना सामग्री पैकेट – 342/-

फार्म नं० 4 (नियम – 8 देखिए)

१.	प्रकाशन	: दिल्ली
२.	प्रकाशन अवधि	: मासिक
३.	मुद्रक	: नीरू आर्ट प्रिन्टर्स, 10/2 DLF इंड.एरिया, मोती नगर, नई दिल्ली
४.	प्रकाशक	: श्री कैलाश चन्द्र श्रीमाली
५.	सम्पादक का नाम	: श्री नन्द किशोर श्रीमाली

क्या भारत के नागरिक हैं? : हां

पूरा पता :

डॉ० श्रीमाली मार्ग, हाईकोर्ट कालोनी, जोधपुर (राज०), फोन : 0291-432209 | ३०६, कोहाट एन्कलेव, पीतमपुरा, नई दिल्ली-34, फोन : 011-7182248

६. उन व्यक्तियों के नाम और पते, जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों – श्री नन्दकिशोर श्रीमाली, श्री कैलाश चन्द्र श्रीमाली, श्री अरविन्द श्रीमाली।

मैं कैलाश चन्द्र श्रीमाली एतद् द्वारा घोषित करता हूं, कि मेरे अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिनांक : 31.03.2000 कैलाश चन्द्र श्रीमाली (प्रकाशक)

कालाष्टमी : 26.5.2000
बटुक भैरव जयंती : 11.6.2000

तीव्र प्रभाव युक्त
भैरव साधनाएं

कलियुग में भैरव साधना जल्दी से सिद्ध होने वाली है। 'तंत्रालोक' में भैरव शब्द की उत्पत्ति '**भैर्भीमादिभि: अवतीति भैरव**' अर्थात भीषण साधनों से भी रक्षा करने वाले भैरव हैं। '**शिव महापुराण**' में बताया गया है कि भैरव भगवान शिव के अवतार हैं –

भैरव: पूर्णरूपो हि शंकर: परात्मन: ।
मूढ़ास्ते वै न जानन्ति मोहिता शिव मायया ॥

अगले दो माह में भैरव साधनाओं के लिये विशेष उपयुक्त हैं, इनमें भी कालाष्टमी (**26.5.2000**) और बटुक भैरव जयंती (**11.6.2000**) किसी भी प्रकार की भैरव साधनाओं के लिये श्रेष्ठतम दिवस हैं। आगे छ: साधनाएं प्रस्तुत की जा रही हैं, जिन्हें वर्ष भर में कभी भी सम्पन्न कर सकते हैं, परन्तु इन दिवसों पर प्रारम्भ करना विशेष अनुकूल है।

आपद उद्धारक बटुक भैरव साधना

'**शक्ति संगम तंत्र**' के 'काली खण्ड' में भैरव की उत्पत्ति के बारे में बताया गया है कि 'आपद' नामक राक्षस कठोर तपस्या कर अजेय बन गया था, जिसके कारण सभी देवता त्रस्त हो गये और वे सभी एकत्र होकर इस आपत्ति से बचने के बारे में उपाय सोचने लगे। अकस्मात उन सभी की देह से एक एक तेजोधारा निकली और उसका युग्म रूप पंचवर्षीय बटुक के रूप में प्रादुर्भाव हुआ। इस बटुक ने 'आपद' नाम के राक्षस को मारकर देवताओं को संकट मुक्त किया, इसी कारण इन्हें आपदुद्धारक बटुक भैरव कहा गया है।

इस वर्ष **11.6.2000** को बटुक जयंती(ज्येष्ठ शुक्ल दशमी, रविवार) है, जो कि बटुक भैरव का सिद्ध दिवस है।

साधना के लाभ

१. जीवन में समस्त प्रकार के उपद्रव, अड़चन और बाधाओं का इस साधना से समापन होता है।

२. जीवन के नित्य के कष्टों और परेशानियों को दूर करने के लिये भी यह साधना अनुकूल सिद्ध मानी गई है।

२. मानसिक तनावों और घर के लड़ाई-झगड़े, गृह क्लेश आदि को निर्मूल करने के लिये यह साधना उपयुक्त है।

४. आने वाली किसी बाधा या विपत्ति को पहले से ही हटा देने के लिये यह साधना एक श्रेष्ठ उपाय है।

५. राज्य से आने वाली हर प्रकार की बाधाओं या मुकदमे में विजय प्राप्त करने के लिये यह श्रेष्ठतम साधना है।

६. इस साधना से साधक की सम्पत्ति को चोर-लुटेरों से भय नहीं रह जाता, चोर उस ओर नजर भी नहीं करते।

साधना विधान

इस साधना को **11.6.2000** या **किसी भी दशमी** को प्रारम्भ करें। अपने सामने काले तिल की ढेरी पर '**बटुक भैरव यंत्र**' को स्थापित करें। धूप, दीप जलाकर यंत्र का सिन्दूर से पूजन करें। दोनों हाथ जोड़कर बटुक भैरव का ध्यान करें –

भक्त्या नमामि बटुकं तरुणं त्रिनेत्रं,
काम प्रदान वर कपाल त्रिशूल दण्डान्।
भक्तार्ति नाश करणे दधतं करेषु,
तं कोस्तुभा भरण भूषित दिव्य देहम् ॥

फिर अपने दायें हाथ में अक्षत के कुछ दानें लेकर अपनी समस्या, बाधा, कष्ट, अड़चन आदि को स्पष्ट रूप से बोल कर उसके निवारण की प्रार्थना करें। फिर अक्षत को अपने सिर पर से घुमाकर आसन के चारों ओर बिखेर दें। इसके पश्चात '**बटुक भैरव माला**' से निम्न मंत्र का एक सप्ताह तक नित्य रात्रि ११ माला जप करें –

बटुक भैरव मंत्र

॥ ॐ ह्रीं बटुकाय आपद उद्धारणाय कुरु कुरु
बटुकाय ह्रीं ॐ स्वाहा ॥

Om Hreem Battukaay Aapad Uddhaarannaay Kuru Kuru Battukaay Hreem Om Swaahaa

साधना समाप्ति के बाद यंत्र व माला को जल में विसर्जित कर दें। शीघ्र ही अनुकूलता प्राप्त होती है।

साधना सामग्री पैकेट – 170/-

उन्मत्त भैरव साधना

कश्मीर में अमरनाथ के दर्शन करने के बाद साधक उन्मत्त भैरव के भी दर्शन करते हैं, यह प्रसिद्ध भैरव पीठ में से एक पीठ है, शंकराचार्य ने स्वयं इस पीठ की स्थापना कर इस मूर्ति का प्राण संजीवन किया था। अमरनाथ मन्दिर के दक्षिण में लगभग आधा किलोमीटर आगे उन्मत्त भैरव की पीठ है। इस पीठ से सम्बन्धित सैकड़ों-हजारों चमत्कारिक कथाएं भारत में विख्यात हैं। कहते हैं कि यदि साधक श्रद्धा के साथ नंगे पांव इस पीठ तक पैदल जाकर उन्मत्त भैरव को भोग लगाता है, तो उसकी मनोकामना पूर्ण होती है। इस भैरव मन्दिर के पीछे के भाग में गर्म पानी का सोता है, इस पानी में नहाने से किसी भी प्रकार की डाइबिटिज या श्वांस की बीमारी एवं और भी प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं। उन्मत्त भैरव का स्वरूप ही रोग हर्ता और कल्याणकारी होता है।

साधना के लाभ

१. इस साधना को करने से दीर्घ काल से ठीक न हो रही बीमारियों पर भी नियंत्रण प्राप्त होता है, तथा शीघ्र ही रोग का निवारण होता है।

२. श्रेष्ठ सन्तान की प्राप्ति के लिये भी इस साधना को बहुत से व्यक्तियों द्वारा सफलता पूर्वक आजमाया गया है।

साधना विधान

इस साधना को **किसी भी सोमवार की रात्रि** से प्रारम्भ करना चाहिये। साधक सफेद धोती पहन कर तेल का एक दीपक प्रज्ज्वलित कर ले। दीपक के सामने किसी ताम्र पात्र में '**उन्मत्त भैरव यंत्र**' (तावीज) को स्थापित करें। तावीज के सामने अक्षत की एक ढेरी बनाकर उसपर '**शुभ्र स्फटिक मणि**' स्थापित करें। दोनों हाथ जोड़कर भैरव ध्यान सम्पन्न करें –

आद्यो भैरव भीषणो निगदितः श्री कालराजः क्रमाद्,
श्री संहारक भैरवोऽप्यथ रु रुश्चोन्मत्तको भैरवः।
क्रोधश्चण्ड उन्मत्त भैरव वरः श्री भूत नाथस्ततो,
ह्यष्टौ भैरव मूर्तयः प्रतिदिनं दधुः सदा मंगलम् ॥

फिर दाहिने हाथ में जल लेकर संकल्प करें कि – "मैं अमुक नाम, अमुक गोत्र का साधक अपने (अथवा परिवार के किसी सदस्य के लिये) लिये उन्मत्त भैरव की साधना में प्रवृत्त हो रहा हूं, शिव के अवतार भगवान भैरव मेरे रोगों का शमन करें (अथवा श्रेष्ठ सन्तान प्राप्ति का वरदान दें)" ऐसा बोलकर जल को भूमि पर छोड़ दें और तावीज व मणि पर काजल एवं सिन्दूर से तिलक करें। फिर '**सफेद हकीक माला**' से दो सप्ताह तक निम्न मंत्र का नित्य ५ माला जप करें –

उन्मत्त भैरव मंत्र

॥ ॐ उं उन्मत्ताय भ्रं भ्रं भैरवाय नमः ॥

Om Un Unmattaay Bhram Bhram Bheiravaay Namah

दो सप्ताह बाद माला व मणि को जल में विसर्जित कर दें तथा तावीज को सफेद धागे में पिरोकर रोगी के गले (यदि रोग मुक्ति के लिये प्रयोग किया गया हो) या मां (यदि सन्तान प्राप्ति के लिये प्रयोग किया गया हो) के गले में धारण करा दें। एक माह धारण करने के बाद जल में विसर्जित करें।

साधना सामग्री पैकेट – 390/-

काल भैरव साधना

भैरव का नाम भले ही डरावना और तीक्ष्ण लगता हो, परन्तु अपने साधक के लिये तो भैरव अत्यन्त सौम्य और रक्षा करने वाले देव हैं। जिस प्रकार हमारे बॉडी गार्ड लम्बे डील डौल वाले भयानक और बन्दूक या शस्त्र साथ में रखकर चलने वाले होते हैं, पर उनसे हमें भय नहीं लगता। ठीक उसी प्रकार उनकी वजह से भैरव भी हमारे जीवन के बॉडी गार्ड की तरह हैं, वे हमें किसी प्रकार से तकलीफ नहीं देते अपितु हमारी रक्षा करते हैं और हमारे लिये अनुकूल स्थितियां पैदा करते

भैरव साधना सम्पन्न करते समय साधक को एक कटोरी में घी और गुड़ मिलाकर नैवेद्य अवश्य अर्पित करना चाहिये। इससे भैरव प्रसन्न होते हैं।

साधना काल में यदि ताजी रोटी में घी को चुपड़ कर कुत्ते (भैरव वाहन) को खिलाया जाये, तो भैरव प्रसन्न होते हैं।

है। यह साधना सरल और सौम्य साधना है, जिसे पुरुष या स्त्री कोई भी बिना किसी अड़चन के सम्पन्न कर सकता है। मध्य प्रदेश के उज्जैन शहर में आज भी काल भैरव एक मन्दिर है, जिसे 'चमत्कारों का मन्दिर' कहा जाता है। तंत्र अनुभूतियों के सैकड़ों सत्य घटनाएं इससे जुड़ी हुई हैं।

साधना के लाभ

१. तांत्रिक ग्रंथों में इसे शत्रु स्तम्भन की श्रेष्ठ साधना के रूप में एकमत से स्वीकार किया गया है।

२. यदि शत्रुओं के कारण अपने प्राणों को संकट हो अथवा परिवार के सदस्यों या बाल-बच्चों को शत्रुओं से भय हो, तो यह साधना एक प्रकार से आत्म रक्षा कवच प्रदान करती है। शत्रु की बुद्धि स्वतः ही भ्रष्ट हो जाती है और वह परेशान करने की सोचना ही बन्द कर देता है।

३. यदि आप ऐसा जगह कार्य करते हैं, जहां हर क्षण मृत्यु का खतरा बना रहता हो, एक्सीडेण्ट, दुर्घटना, आगजनी, गोली-बन्दूक, शस्त्र से या किसी भी प्रकार की **अकाल मृत्यु का भय** हो, तो **'काल भैरव साधना'** अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध होती है। वस्तुतः यह काल को टालने की साधना है।

४. स्त्रियां इस साधना को अपने बच्चों एवं सुहाग की दीर्घायु एवं प्राणरक्षा के लिये भी सम्पन्न कर सकती हैं।

साधना विधान

कालाष्टमी की रात्रि काल चक्र को अपने अधीन करने की रात्रि है, काली और काल भैरव दोनों की संयुक्त सिद्धि रात्रि है। इस साधना को **'कालाष्टमी'** (26.5.2000) या **किसी भी अष्टमी** को रात्रि में प्रारम्भ करना चाहिये। साधक लाल (अथवा पीली) धोती धारण कर लें। स्त्रियां लाल साड़ी धारण कर सकती हैं। इसके बाद लाल रंग के आसन पर बैठ कर दक्षिण दिशा की ओर मुख कर लें। अपने सामने एक थाली में कुंकुम या सिन्दूर से **'ॐ भं भैरवाय नमः'** लिख दें। फिर थाली के मध्य **'काल भैरव यंत्र'** और **'महामृत्युंजय गुटिका'** को स्थापित कर दें। लोहे की कुछ कीलें अपने पास पहले से ही मंगा कर रख लें। यदि आपके परिवार में सात सदस्य हैं, तो उन सबकी रक्षा के लिये सात कीलें पर्याप्त होंगी।

प्रत्येक कील को मौली के टुकड़े से बांध दें। बांधते समय भी **'ॐ भं भैरवाय नमः'** का जप करें। फिर इन कीलों को अपने परिवार के जिन सदस्यों की रक्षा कामना आपको करनी है, उनमें से प्रत्येक का नाम एक-एक कर बोलें और साथ ही एक एक कील यंत्र पर चढ़ाते जाएं। यह अपने लिये आत्म रक्षा बंध या कवच प्राप्त करने का प्रयोग है। फिर भैरव के निम्न स्तोत्र मंत्र का मात्र का १०८ बार उच्चारण करें –

यं यं यं यक्ष रूपं दश दिशि विदितं भूमि कम्पायमानं।
सं सं सं संहार मूर्ति शिर मुकुट जटा शेखरं चन्द्र बिम्बम्।
दं दं दं दीर्घ कायं विकृत नख मुखं ऊर्ध्वरोमं करालं।
पं पं पं पाप नाशं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम्॥

दायें हाथ की मुट्ठी में काली सरसों लेकर निम्न मंत्र का ११ बार उच्चारण करें –

ॐ काल भैरव, श्मशान भैरव, काल रूप काल भैरव! मेरो बैरी तेरो आहार रे। काढ़ि करेजा चखन करो कट कट। ॐ काल भैरव, बटुक भैरव, भूत भैरव, महा भैरव, महा भय विनाशनं देवता। सर्व सिद्धिर्भवेत्।

फिर अपने सर पर से सरसों को तीन बार घुमाकर सरसों के दानों को एक कागज में लपेट कर रख दें। इसके बाद निम्न मंत्र का एक घण्टे तक जप करें –

काल भैरव मंत्र

॥ ॐ भैरवाय वं वं वं ह्रां क्ष्रौं नमः ॥

Om Bheiravaay Vam Vam Vam Hraam Kshroum Namah

यह केवल एक दिन का प्रयोग है। जप के बाद साधक आसन से उठ जाये, और भैरव के सामने जो भोग रखा हो, उसे तथा यंत्र पर जो कीलें चढ़ाई हैं, उन्हें और सरसों के दानों को यंत्र व गुटिका के साथ लेकर किसी चौराहे पर रख आएं।

साधना सामग्री पैकेट – 360/-

भैरव प्रत्यक्ष दर्शन साधना

१. इस साधना से भैरव शीघ्र प्रसन्न होते हैं, और साधक को मनोवांछित वरदान देने में समर्थ होते हैं।

२. भैरव के प्रत्यक्ष दर्शन के लिये यों तो अन्य कई और साधनात्मक विधान भी हैं, परन्तु इस साधना का प्रयोग भैरव के दर्शन और प्रत्यक्षीकरण के लिये किया जाता है।

३. साधक को पूरे जीवन भर के लिये भैरव सिद्ध हो जाते हैं और निरन्तर हर प्रकार के खतरों से उसकी रक्षा करते हैं तथा जब भी साधक को आवश्यकता पड़े तब भैरव सहायता को उपस्थित होते हैं।

साधना विधान

इस साधना के लिये काले वस्त्रों को धारण करना चाहिये तथा काले आसन का ही प्रयोग करना चाहिये। साधना काल में ब्रह्मचर्य पालन भी अनिवार्य है। इस साधना को **22.6.2000** अथवा **कृष्ण पक्ष की पंचमी** से प्रारम्भ किया जा सकता है। यह रात्रि कालीन साधना है। संन्यासियों के मध्य इस साधना को केवल नदी तट, श्मशान अथवा शिवालय में ही करने का विधान है, परन्तु गृहस्थ साधकों के लिये इस साधना को घर रात्रि के समय किसी एकान्त कक्ष में बिना किसी संशय के सम्पन्न किया जा सकता है।

अपने सामने सिन्दूर की एक ढेरी पर '**भैरव यंत्र**' को स्थापित करें। फिर गीली मिट्टी से एक छोटी सी मानवाकार मूर्ति बनाएं और उसे सिन्दूर से रंग कर यंत्र के ऊपर स्थापित कर दें। संक्षिप्त गुरु पूजन कर लें। फिर बाएं हाथ में अक्षत के कुछ दाने लेकर आत्म रक्षा मंत्र का सस्वर उच्चारण करते हुए अक्षत को चारों दिशाओं में बिखेर दें–

आत्म रक्षा मंत्र

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं नमः पूर्वे। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रीं नमः आग्नेये। ॐ ह्रीं श्रीं नमः दक्षिणे। ॐ ग्लूं ब्लूं नमः नैऋत्ये। ॐ प्रूं प्रूं सं सः नमः पश्चिमे। ॐ भ्रां भ्रां नमः वायव्ये। ॐ भ्रां भ्रं भ्रं फट् नमः ऐशान्ये। ॐ ग्लौं ब्लूं नमः ऊर्ध्वे। ॐ भ्रां भ्रं भ्रः नमः अधोदेशे।

इसके बाद काजल से अपने मस्तक पर तिलक करें और यंत्र तथा मानवाकृति पर तिलक करें। अपने ललाट पर, यंत्र तथा मानवाकृति पर सिन्दूर से बिन्दी लगाएं। फिर '**काली हकीक माला**' से मंत्र जप प्रारम्भ करें। इस साधना में प्रयुक्त मंत्र अत्यंत तीक्ष्ण और शक्तिशाली है, अतः केवल दृढ़ चित्त और साहसी व्यक्तियों को ही इस साधना को करना चाहिये। स्त्रियां, वृद्ध, या बालक इस साधना को न करें। यह रात्रिकालीन साधना है और इसमें एक लाख मंत्र जप का अनुष्ठान करना होता है। इस हेतु नित्य कितना मंत्र जप करना है, यह अपनी सुविधानुसार निर्धारित कर लें। चाहें तो चालीस दिन तक नित्य २५ माला भी जप कर सकते हैं।

भैरव प्रत्यक्षीकरण मंत्र

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः। क्षां क्षीं क्षूं क्षः। खां खीं खूं खः। घ्रां घ्रीं घ्रूं घ्रः। भ्रां भ्रीं भ्रूं भ्रः। भ्रों भ्रों भ्रों भ्रों क्लों क्लों क्लों क्लों। श्रों श्रों श्रों श्रों क्रों क्रों क्रों क्रों। हुं हुं हुं हुं हुं हुं हुं हुं फट् सर्वं तो रक्ष रक्ष रक्ष रक्ष भैरव नाथ नाथ हुं फट्।

साधना काल में जप करते समय भैरव की धुंधली आकृति अनुभव हो सकती है। जिस भी दिन किसी प्रकार की अनुभूति हो, उसके दूसरे दिन भैरव की उस मूर्ति (मिट्टी की मानवाकृति) को नीले रंग का वस्त्र अर्पित करें, उस तेल में सिन्दूर मिलाकर तिलक लगावें। नैवेद्य के साथ आटे और गुड़ का बना हुआ पुआ, तेल से चुपड़ी हुई आटे की रोटी, गुड़, मीठे पकोड़े, उड़द की दाल के बने पकोड़े थाली में सजाकर धूप बत्ती जलाकर अर्पित करें। फिर मंत्र जप प्रारम्भ करें।

यदि उस दिन भैरव के दर्शन न हों, तो दूसरे दिन भी ऐसा ही करें। यदि दूसरे दिन भी दर्शन न हों, तो तीसरे दिन भी करें, तीसरी रात्रि में अवश्य ही भैरव के दर्शन हो जाते हैं। फिर जब भैरव वरदान मांगने को कहें, तब साधक अत्यन्त विनम्र भाव से अपनी कामना प्रकट कर दें। इस साधना के बाद कोई भी शत्रु, तांत्रिक या कोई भी व्यक्ति फिर साधक पर हावी नहीं हो पाता है। साथ ही साधक को कई प्रकार की शक्तियां भी प्राप्त हो जाती हैं।

साधना समाप्ति के बाद यंत्र व माला को किसी निर्जन स्थान में रख आयें।

साधना सामग्री पैकेट – 410/-

विकराल भैरव साधना

वर्तमान समय ग्रहों की दृष्टि से पर्याप्त चिन्ताजनक है। पिछले कई वर्षों से ज्योतिषियों में वर्ष २००० के मई माह में पड़ने वाले षडग्रही योग, जुलाई में तीन ग्रहण आदि कुयोगों को लेकर विश्व युद्ध छिड़ने, घातक शस्त्रों के दुरुपयोग तथा इन ग्रहों की वजह से भीषण प्राकृतिक प्रकोपों में भयंकर जन-धन की हानि की आशंका व्यक्त की जा रही है। यह आशंका निर्मूल भी नहीं है, क्योंकि विश्व भर में इसी तरह का वातावरण बहुत पहले से ही बनने लगा है। व्यक्तिगत रूप से भी ऐसे कुयोगों की चपेट में ६० प्रतिशत से अधिक लोगों के आने की आशंका होने से पूज्य गुरुदेव ऐसे अनेक उपाय शिविरों और पत्रिका के माध्यम से प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनसे ऐसे दुर्योगों के दुष्प्रभावों को यदि पूरी तरह रोका जाना सम्भव न भी हो, तो उसके दुष्परिणाम यथासम्भव कम से कम किये जा सकें। ऐसा ही एक प्रयोग भगवति छिन्नमस्ता और छिन्नमस्ता के भैरव से सम्बन्धित विकराल भैरव की साधना है।

साधना के लाभ

१. यह साधना केवल ग्रह बाधा से ही नहीं किसी भी प्रकार के तांत्रिक, मांत्रिक, दुष्प्रभावों, भूत-प्रेत बाधा अथवा

डिप्रेशन (जीवन में हताशा) या किसी भी प्रकार की असफलता जन्य निराशा को दूर करने के लिये राम बाण है।

२. यदि आपका कोई प्रियजन किसी कारण आपकी बात नहीं मान रहा है, किसी अन्य के प्रभाव में आ गया है, उसे अपनी बात मनवाने के लिये भी इस साधना का अचूक प्रयोग किया जा सकता है।

साधना विधान

यह उग्र साधना है। अतएव गुरु दीक्षा लेकर ही इस साधना में प्रवृत्त होना चाहिये। **7.4.2000** से **13.5.2000** के बीच **किसी भी शुक्रवार, रविवार या मंगलवार** की रात्रि में यह साधना प्रारम्भ करना ज्यादा अच्छा है। इसके अतिरिक्त इस साधना को **किसी अमावस्या की रात्रि** में भी प्रारम्भ किया जा सकता है। काले वस्त्र धारण कर, काले आसन पर दक्षिण दिशा की ओर मुख कर बैठ जाएं, अपने सामने '**भैरव गुटिका**' और '**तांत्रोक्त नारियल**' रख लें। जिस व्यक्ति की तंत्र बाधा, शत्रु बाधा या अन्य बाधा से मुक्ति चाहते हों, उसका नाम का उच्चारण कर बाएं हाथ की मुट्ठी में सरसों के दाने बंद कर लें। फिर निम्न मंत्र बोलते हुए सरसों को चारों ओर फेंक दें–

ॐ आं ह्रीं ह्रीं ह्रीं सर्व बाधा नाशय नाशय मारय मारय उच्चाटय उच्चाटय, मोहय मोहय, वशं कुरु कुरु सर्वार्थ कस्य सिद्धि रूपं त्वं विकराल! काल भक्षणं महादेव स्वरूपं त्वं, सर्व सिद्धिर्भवेत्! ॐ विकराल भैरव, महाकाल भैरव, काल भैरव, महाभैरव, महाभय, सर्व तंत्र बाधा विनाशनं देवता। सर्वसिद्धिर्भवेत्।

फिर '**काली हकीक माला**' से निम्न मंत्र की १४ माला नित्य ८ दिन तक जप करें –

विकराल भैरव मंत्र

॥ ॐ भ्रं भ्रं हुं हुं विकराल भैरवाय भ्रं भ्रं हुं हुं फट् ॥

Om Bhram Bhram Hum Hum Vikaraal Bheiravaay Bhram Bhram Hum Hum Phat

साधना समाप्ति के बाद समस्त सामग्री को जल में विसर्जित कर दें।

साधना सामग्री पैकेट – 330/-

स्वर्णाकर्षण भैरव

'**रुद्रयामल तंत्र**' में उल्लेख है कि प्रत्येक महाविद्या से सम्बन्धित परस्पर एक-एक भैरव भी हैं। भगवती कमला महाविद्या से सम्बन्धित भैरव को '**नारायण भैरव**' के नाम से जाना जाता है। जिस प्रकार भगवती कमला महालक्ष्मी का ही स्वरूप हैं, ठीक उसी प्रकार नारायण भैरव भी दारिद्रय निवारण, धन प्रदाता, और सुख सौभाग्य वृद्धि आदि गुणों से युक्त हैं। इन्हीं गुणों के कारण इन्हें स्वर्णाकर्षण भैरव भी कहा जाता है, जिनकी साधना अधिक तीव्र और ज्यादा अचूक है।

साधना के लाभ

१. इस साधना से साधक को अकस्मात स्वर्ण की प्राप्ति नहीं होने लग जाती परन्तु आकस्मिक धन प्राप्ति, आय वृद्धि के साधनों में वृद्धि आदि के सुयोग जरूर बनने लगते हैं।

२. यदि आपका कोई धन रुका हुआ है या फंसा हुआ है अथवा कोई आपसे धन उधार ले गया है और वापस करने नाम नहीं ले रहा है, या आनाकानी कर रहा है। इन सभी स्थितियों के लिये स्वर्णाकर्षण भैरव मंत्र अनुकूल है।

४. यदि व्यक्ति ऋण के दल-दल में फंस गया हो, तो उसे ऋण मुक्ति मिलती है, उसकी दरिद्रता दूर होती है।

साधना विधान

रात्रि में स्नान कर पीली धोती धारण कर लें तथा उत्तर दिशा की ओर मुख कर बैठ जाएं। सुगन्धित धूप व अगरबत्ती जला लें। संक्षिप्त गुरु पूजन कर अपने सामने '**स्वर्णाकर्षण भैरव यंत्र**' रख लें। उस पर कुंकुम से एक त्रिकोण बनाएं और उसके तीन कोनों में '**३ कमला बीज**' रखें।

फिर दोनों हाथ जोड़कर भैरव का ध्यान करें –

ॐ करकलित कपालः कुण्डली दण्डपाणिम्,
तरुण तिमिर नीलो व्याल यज्ञोपवीती।
ऋतु समय सपर्य्या विघ्न विच्छेद हेतु,
जयति भैरवनाथ सिद्धिदः साधकानाम् ॥

इसके बाद '**कमलगट्टे की माला**' से निम्न मंत्र का १६ दिन तक नित्य ३ माला मंत्र जप करें –

स्वर्णाकर्षण भैरव मंत्र

॥ ॐ ऐं क्लीं क्लीं क्लूं ह्रां ह्रीं ह्रूं सः वं आपद उद्धारणाय अजामल बद्धाय लोकेश्वराय स्वर्णाकर्षण भैरवाय मम दारिद्र्य विद्वेषणाय ॐ ह्रीं महाभैरवाय नमः ॥

Om Ayeim Kleem Kleem Kloom Hraam Hreem Hram Sah Vam Aapad Uddhaarannaay Ajaamal Baddhaay Lokeshwaraay Swarnnaakarshannaay Bheiravaay Mam Daaridrya Vidveshannaay Om Hreem Mahaa Bheiravaay Namah

जब साधना समाप्त हो जाए, तब यंत्र व माला को जल में विसर्जित कर दें तथा कमला बीजों को एक पीले कपड़े में बांध कर किसी मन्दिर में चढ़ा दें।

साधना सामग्री पैकेट – 480/-

शिष्य धर्म

'. . . धर्म कोई जड़ धारणा नहीं, मनुष्यों के समूह को भी धर्म नहीं कहते . . .क्योंकि धर्म कोई मृत वस्तु नहीं होती, किसी विशेष वाद की चट्टान पर कपड़े धोते रहने से कपड़े उजले नहीं होते . . .'

– ये शब्द हैं पूज्यपाद गुरुदेव के जिन्हें उनकी अमर कृति 'गुरु-सूत्र' से यहां उद्धृत किया गया है। जो किसी भी शिष्य के लिए श्रीमद्भगवतगीता से कम पवित्र पुस्तक नहीं है।

पूज्यपाद गुरुदेव की धर्म के सम्बन्ध में दो टूक शब्दों की गई टिप्पणी हमें यह सोचने के लिए विवश कर देती है कि यदि धर्म किसी विशदता में जाकर सम्पूर्ण होता है तो क्या यही बात शिष्य धर्म के प्रति भी व्यवहृत नहीं होगी?

क्या अपने विशद स्वरूप में शिष्य धर्म केवल कुछ एक नियमावलियों के पालन कर लेने के पश्चात इति पर पहुंच जाता है अथवा किसी विशदता में अवस्थित होता हुआ सम्पूर्ण होता होगा?

पूज्यपाद गुरुदेव ने अपने शिष्यों को सदैव नवीन दृष्टिकोण से सोचने की चेतना दी है और उन्होंने ही चेतना दी थी कि गुरु का तात्पर्य किसी व्यक्ति से न होकर उस जीवंतता से होता है जो प्राणश्चेतना के रूप में शिष्य को निरंतर गतिशील बनाए रखती है।

समाज के संस्कारों में रचे-पचे आए शिष्य को गुरु सान्निध्य में रहने पर मर्यादा सिखाने के लिए यह आवश्यक था किसी नियमावली की रचना की जाए जिससे सभी शिष्यों के लिए एक आचार-संहिता बन सके किंतु इसका यह अर्थ तो नहीं कि शिष्य सदैव उन्हीं नियमों के घेरे में बंधा घूमता रहे?

इस प्रकृति में सब कुछ परिवर्तनशील है और प्रकृति में हो रहे परिवर्तन के साथ वे ही परिवर्तित हो सकते हैं जो प्रकृति से निरंतर सामंजस्य बनाए रखने की कला को जानते हैं।

पूज्यपाद गुरुदेव ने एक प्रवचन में कहा है कि जिस दिन शिष्य मेरे सामने पहली बार आकर खड़ा होता है मैं उसी दिन उसके बारे में समझ जाता हूं कि वह कहां तक मेरे साथ चलेगा लेकिन मैं मुंह से कुछ नहीं बोलता।

. . . .और कोई शिष्य कैसे सदैव गुरु चरणों में नत बना रह सकता है, इसके लिए पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा ही बताया गया एक सूत्र है कि यदि शिष्य को सदैव यह स्मरण रहे कि जिस प्रथम दिन वह गुरुदेव से मिला था उस दिन उसकी क्या मन:स्थिति थी तो उसे कभी प्रमाद नहीं हो सकता है।

वास्तव में शिष्य धर्म एवं गुरु धर्म दो पृथक स्थितियां नहीं हैं। जिस प्रकार से किसी भी नदी का अस्तित्व अंततोगत्वा समुद्र में मिल कर सम्पूर्ण होता है उसी प्रकार से किसी भी शिष्य की पूर्णता तब होती है जब वह अपने गुरु में विसर्जित हो जाता है अर्थात उनके समक्ष संकल्प-विकल्प से रहित हो जाता है।

नदी जब तक समुद्र में विसर्जित नहीं होती है तब तक उसका धर्म होता है निरंतर छटपटाते हुए किनारों को तोड़कर बहते रहना और जब वह विसर्जित हो जाती है तो उसका धर्म बन जाता है समुद्र के प्रवाह में घुल-मिल कर उमड़ते रहना।

आइए! इस निखिल जयंती के पर्व पर शिष्य धर्म के प्रतिपूरक गुरु धर्म की चर्चा करें क्योंकि पूज्यपाद गुरुदेव सदैव यही कहते थे कि अभी बहुत मार्ग तय करना है और मेरे कार्य तुम्हें ही पूरे करने हैं।

– **श्रीमन्**

गुरु वाणी

卐 जो सब कुछ दे दे, जो सब कुछ पूर्ण कर दे, जो शिष्य को एक कण से आकाश बना दे, जो एक मामूली से वाष्प को बादल बना दे, गंगोत्री बना दे, वह गुरु है।

卐 जीवन का मूलभूत तात्पर्य ही विरह है . . . और विरह के माध्यम से ही एक शिष्य पूर्ण रूप से अपने गुरु में आत्मसात हो सकता है। गुरु तक पहुंचने के लिये शिष्य के अन्दर एक वेग, एक तीव्रता होनी चाहिये, मन में एक ज्वार होना चाहिये कि उड़ू और मिल जाऊं।

卐 जीवन तो फना होने की ललक है, दीवाना बन जाने का जुनून है . . . और जो ऐसा नहीं कर सकता वह तो जमा हुआ बर्फ है, ऐसा जीवन बहती हुई नदी नहीं बन सकता, जो अपने आप में सिमट कर रह गया उसके जीवन का कोई अस्तित्व नहीं है।

卐 और शिष्य वह है जो जिसमें एक तड़फ हो, एक बेचैनी होनी चाहिये, वह अपने आप को कितना ही काबू करे, मगर हर क्षण उसके मन में एक भावना, एक चिन्तन विचार बना रहे कि मुझे अपने जीवन में वह प्राप्त करना ही है, जो मेरा लक्ष्य है। क्योंकि मैं पगडण्डी के प्रारम्भ से शुरु हुआ हूं और मुझे पगडण्डी के अंत तक पहुंचना है और पगडण्डी के अंत तक पहुंचने में ही मेरे जीवन की पूर्णता है। ऐसा चिन्तन शिष्य का हो सकता है।

卐 एक सामान्य मनुष्य का ब्रह्म में लीन हो जाना, अपने आप की परिपूर्णता है, वह एक जर्रे को आफताब बना देने की क्रिया है, गुरुता है, श्रेष्ठता है, दिव्यता है। और जब शिष्य के जीवन में ऐसा हो जाता है, तब वह चैतन्य हो जाता है, तब वह सड़कों पर उतर जाता है और झूमता हुआ आगे बढ़ता है। लोग उसे पागल कहते हैं, पत्थर फेंकते हैं, गालियां देते हैं, जहर देते हैं, झकझोरते हैं, मगर वह इस बात की परवाह नहीं करता।

卐 जब तक वह अपने इष्ट से गुरु से साक्षात नहीं कर लेता, तब तक उसके अन्दर विरह की एक आग धधकती रहती है, और उसका इलाज फिर किसी वैद्य के पास नहीं होता, उसका इलाज तो इष्ट के पास ही होता है, प्रिय के पास ही होता है, कि जब वे आयेंगे तब मैं उसमें अपने आप को समाहित कर दूंगा, कर दूंगी। जब प्रियतमा का यह भाव साधक में आ जाता है, तब उसमें कोमलता आ जाती है।

卐 भावनाओं की खुमारी में वह केवल एक बात कहती है, कहता है कि यदि मैं जीवन में उस ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सका, तो फिर जीवन का मकसद ही क्या रह जायेगा, जीवन का उद्देश्य ही कुछ नहीं रह जायेगा। और मैं उसे प्राप्त करने के लिये सब कुछ खोने को तैयार हूं, अपने आप को फना कर देने के लिये तैयार हूं, अपने आप को विसर्जित कर देने को तैयार हूं। मैं तो तैयार हूं, वह मुझे मिले, क्योंकि उनका मिलना ही मेरे जीवन की पूर्णता है।

卐 जिस दिन यह दिल काबू में नहीं रहे, जिस दिन लोग समझायें, पावों में बेड़ियां डाल दें, और उसके बावजूद भी वह रुक नहीं सके . . . तब समझना चाहिये कि उसका ह्रदय जाग्रत हुआ है, तब समझना चाहिये कि उसके दिल में एक क्रान्ति की चिनगारी पैदा हुई है, तब समझना चाहिये कि वह गुरु से एकाकार हो जाने के लिये और प्रभु में अपने आप को विसर्जित करने के लिये तैयार हो गया है और विसर्जित कर देने की यह क्रिया उस दिन प्रारम्भ होती है, जब उसका अपने ह्रदय पर काबू नहीं रहता।

卐 जब जीवन गुरु से और इष्ट से एकाकार हो जाने की तीव्र प्यास पैदा हो जाती है, तब वह साफ कहता है कि तुम्हारा प्रेम मेरे सीने में दफन है, मैं तुम्हें जानता हूं, मैं बहुत अच्छी तरह से तुम्हें पहिचानता हूं, तुम कहो तो मैं इस बात को पूरी दुनिया में फैला दूं, मैंने तुम्हारे प्यार को अपने हृदय में छिपा कर रखा है, मेरे हृदय में एक जज्बा पैदा हुआ है।

卐 गुरु को प्राप्त करने की क्रिया है – वह है गुरु के अन्दर उतरने की क्रिया, और उतरने के लिये कौन सा रास्ता है, कौन सी पगडण्डी है – वह पगडण्डी है प्रेम की, वह पगडण्डी है प्यार की, वह पगडण्डी है फना होने की, वह पगडण्डी है अपने आप को मिटा देने की।

卐 जब गुरु से निकटता बनती है, तब उनकी याद आते ही आंखों से आंसू छलक जाते हैं, आंखों के कोर में सिमटे आंसू की बूंद में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाया हुआ होता है, उस आंसू की बूंद मे प्रेम का सागर लहरा रहा होता है . . . जो गालों पर लुढ़क कर नीचे उतर जाती है।

卐 अगर प्रिय का स्मरण हो, और आंख में आंसू झिलमिलाये ही नहीं तो फिर जीवन का कोई अर्थ ही नहीं . . . यदि हम आंख बंद करें और प्रिय का एहसास ही न हो, तो फिर प्रेम ही कैसा हुआ? क्योंकि प्रेम तो सम्पूर्ण रूप से सिमटा हुआ एक अश्रुकण ही तो है, जो आंख की कोर से निकलता है और पूरे संसार में व्याप्त हो जाता है, झकझोर देता है, प्रेमी के मन को, आत्मा को, वह प्रेमी चाहे ईश्वर हो, वह प्रेमी चाहे गुरु हो।

शिष्य की उलाहना – गुरुदेव! खास निगाहों से तुमने मुझे देखा, देखा और मैं अलमस्त हो गया . . . और मैं अलमस्त हो गया तो अब मुझे इस दुनिया की परवाह भी नहीं है, इस बात की मुझे चिन्ता नहीं है कि ये दुनिया मुझे क्या कहेगी और क्या नहीं कहेगी, इस बात की मुझे चिन्ता नहीं है। संसार की निगाह में मैं बुरा हो सकता हूं, पर मेरा हृदय तो गुलाब की तरह है, यह हो सकता है कि हवा के क्रूर थपेड़ों से मुरझा गया हो। यह हो सकता है कि उसमें वह खिलखिलाहट, वह मुस्कराहट, वह छलछलाहट नहीं रही, यह तो तुम्हारा कसूर है, मेरा कसूर नहीं है, मगर उसके बावजूद भी मैं किसी के हृदय में खटका नहीं हूं, किसी से अपने गम को कहा नहीं है, मुझे उम्मीद है कि तुम्हारी वह रहम नजर एक दिन फिर मेरी ओर उठेगी।

卐 जिनको सर कटाना ही नहीं आता, जिसको अपने आप को लुटाना ही नहीं आता, उसके दिल में चोट कहां लग सकेगी, उसमें तड़फ और बेचैनी कहां से आ सकेगी . . . आशिकी में तो अपने आप को जला देना पड़ता है, रौंद डालना होता है, और तब वहां जो अंकुर फूटेगा, वह प्रेम का अंकुर होगा।

卐 जहां सब कुछ मिटा देने की क्रिया होगी, वहां प्रेम का पौधा पनपेगा। जो अपनी हस्ती को मिटा सकता है वह सब कुछ पा सकता है।

卐 साधना में सिद्धि प्राप्त करनी है, तो तुम्हें प्रेम करने की कला भी सीखनी होगी, एक–एक सांस को उसे समर्पित कर देने की क्रिया सीखनी होगी। और जिस दिन से तुम गुरु से प्यार करने लग जाते हो, उस क्षण से वह सांस तुम्हारी नहीं होती, वह तो गुरु की अमानत होती है और गुरु उस सांस को तपस्या में बदल कर के तुम्हारे अन्दर समाविष्ट कर देता है।

– सद्गुरुदेव परमहंस स्वामी
निखिलेश्वरानन्द जी ■

◆ **शहडोल** से **संतोषी चन्देल** ने सद्गुरुदेव के प्रति अपने भावों को कविता के रूप में लिख गुरु चरणों में भेजा है –

करहुं सखी जब मैं गुरु पूजन, सद्गुरु के मोहे होवे दर्शन।
जो सद्गुरु शरण में जाये, मनवांछित फल वो पा जाये।
जिस दिन से गुरु नेह लगी, सब दुःख दर्द हेराय गयो री।

◆ **बिलासपुर (हि.प्र.)** जिले के निवासी **श्री कुलदीप चन्देल**, जो कि **दैनिक समाचार पत्र 'जनसत्ता'** के **संवाददाता** है लिखते है – "मेरा इकलौता पुत्र दो बार मैट्रिक की परीक्षा में फेल हो चुका था, पढाई से विमुख था, शरारतों व गंदी संगत में ही समय व्यतीत करता था। मैं उसे समझा-बुझा व मार-पीट कर हताश व निराश हो चुका था। इस बीच मैं मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान पत्रिका के माध्यम से गुरुदेव के सम्पर्क में आया। मैंने अपने पुत्र को पत्रिका में प्रकाशित **साधना सफलता** के अन्तर्गत दिया गया विद्या प्राप्ति के लिये भगवान शिव से सम्बन्धित एक प्रयोग सम्पन्न करवाया। उसे गुरु चरणों में अपनी बुद्धि लगाने को प्रेरित किया। फिर पत्रिका में **सरस्वती दीक्षा** के बारे में पढ़कर अपने पुत्र का फोटो जोधपुर भेजकर फोटो द्वारा उसे दीक्षा दिलवाई।

दीक्षा प्राप्त करने के बाद मेरे पुत्र में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा। उसकी प्रतिदिन की शिकायतें लोगों से सुन-सुन कर मैं परेशान हो गया था। दीक्षा के बाद उसमें सुसंस्कारों की छाप दिखने लगी है। और इस बार वह गुरु कृपा से मैट्रिक में पास भी हो गया है। मुझे ही नहीं मेरे १८ वर्षीय पुत्र को भी अब विश्वास हो गया है कि यह सफलता केवल गुरु कृपा से ही सम्भव हुई है।"

◆ **छिन्दवाड़ा** से **नरेश बुनकर** ने गुरु चरणों में लिखा है –

तेरे दर के पुजारी हैं, तेरी चौखट पे आये हैं।
हम अकेले नहीं हैं, साथ में गमो-दुःख लाये हैं॥
या रब हम और कहें भी किससे बिगड़ी बनाने के लिये।
तू ही तो है सुनने के लिये, हम तो बस सुनाने के लिये॥
करम की मार है, तू एक बार रहम कर दे, तो बेड़ा पार है।

इसे प्यार नही तो और क्या कहें?

नव वर्ष के प्रारम्भ में, उसके कुछ दिन पूर्व और कुछ दिन बाद तक कई पत्र, कई ग्रीटिंग कार्ड प्राप्त होते ही रहे, और डाक व्यवस्था की यह अनुकम्पा है कि कुछ कार्ड तो पूरे एक महीने बाद भी प्राप्त हुए। परन्तु जो भी हो, पूरे जनवरी अन्त तक देश भर से प्यार भरे कार्ड आते ही रहे, और पूज्य गुरुदेव व माताजी के हाथों में आकर उन्हें मन्द मुस्कान बिखेरने के लिये विवश करते ही रहे, पूरे एक माह तक, जिसका श्रेय मात्र आपको ही है।

उड़ीसा से श्री जगन्नाथ हों, कर्नाटक से अजय भारद्वाज या ए.पी. भिंगे हों, हरियाणा से श्रीरामनाथ हों, उ.प्र से कृष्ण नारायण यादव हों, मुरैना, म.प्र. से श्री सुशील श्रीवास्तव हों, पंजाब से मुख्तार सिंह गिल हों, राजस्थान से श्री माधव सिंह शेखावत हों, हिमाचल से सुरेश चन्द्र गुप्ता हों, या बिहार के प्रमोद महाजन हों, बंगाल से सोतीश मुखर्जी हों, गुजरात के धीरिशभाई हों, विदेशों से भी कार्ड प्राप्त हुए और सुदूर तमिल नाडु मद्रास से भी प्राप्त हुए, आसाम से भी प्राप्त हुए, तो देश की सीमा पर तैनात फौजियों से भी प्राप्त हुए, किस किस का नाम लें।

कुछ कार्ड छोटे थे तो कुछ बहुत बड़े आकार के थे। छोटे-छोटे बच्चों ने भी अपनी अस्पष्ट लिखावट में कार्ड भेजे थे तो बहुत सुन्दर लिखावट और रंगों से संयोजित करके भी कार्ड भेजे थे। कोई सिर्फ 'चरण स्पर्श' और 'नव वर्ष पर अभिनन्दन' लिखकर ही मौन हो गया था तो किसी ने 'बहुत बहुत प्यार' लिखा था और प्यार के पहले 'बहुत' इतनी अधिक बार लिख दिया था, कि पूरे कार्ड में कम से कम १०८ बार बहुत तो लिखा ही गया था।

यही प्यार होता है, शिष्य का सद्गुरु के प्रति, गुरु माता के प्रति, शब्दों का संयोजन, वाक्य विन्यास और कार्ड के आकार रूप तो मात्र व्यक्त करने का एक जरिया भर ही होते हैं। प्रत्येक शिष्य चाहे वह हिन्दी भाषी हो, चाहे उड़ीसा, तमिल नाडू, कर्नाटक, आंध्र, गुजरात, बंगाल या विदेश के रहने वाले अंग्रेजी भाषी हों, सद्गुरु के हृदय में प्यार तो सबके लिये समान ही होता है। जो भेज सका नव वर्ष पर उसने कार्ड भेजा, देश के ग्रामीण अंचल के किसी छोटे से गांव में रहने वाला एक शिष्य कार्ड नहीं भी भेज सका, लेकिन शिष्यता का भाव तो दोनों का एक ही है। दोनों को ही, और **सभी को सद्गुरुदेव का, माताजी का और गुरु त्रिमूर्ति का सद्गुरु निखिल जन्मोत्सव २१ अप्रैल पर बहुत बहुत प्यार भरा आशीर्वाद है।**

साधक साक्षी हैं

गुरुधाम के साधना हाल वाला चित्र हूबहू उसी तेजस्वी संन्यासी का था

मैं लगभग १५ वर्षों से अपनी आध्यात्मिक प्यास को बुझाने के लिये योग्य सद्गुरु की खोज कर रहा था, कि एक दिन मुझे गुरु भाई से '**कुण्डलिनी नाद ब्रह्म**' पुस्तक पढ़ने को मिली। पुस्तक पढ़ते ही मेरी आंखों से अश्रुधार प्रवहित होने लगी, मुझे ऐसा लगने लगा कि वर्षों से मुझे जिनकी खोज थी, वे यही हैं, रात दिन मेरी बेचैनी बढ़ती ही गई कि कब जाकर मैं उनसे मिल सकूं।

दीपावली-1995 के शिविर के लिये मैं जोधपुर रवाना हो गया। जब मैं बिजुरी स्टेशन में टहलने के लिए उतरा, तभी एक तेजस्वी साधू हाथ में कमण्डल तथा गले में रुद्राक्ष माला धारण किये हुए मेरे सामने आए। उनके शरीर से निकलती तीव्र सुगन्ध और विद्युत तरंगों से मेरा तन-मन झंकृत हो उठा। उनके तेजस्वी मुखमण्डल को देखते ही हाथ जोड़कर मैं सम्मोहित सा उनके खड़ाऊं पहने चरणों में गिर पड़ा। उनका आशीर्वाद युक्त हाथ मेरे कन्धों पर पड़ते ही मैं अत्यंत तरंगित व असीम आनन्द से भर गया तथा उन्होंने मुझसे कहा – "***बेटा! कहां जा रहे हो?***"

मैंने हाथ जोड़कर रोते हुए कहा – "बाबाजी, मैं गुरु दर्शन करने दीक्षा लेने जोधपुर जा रहा हूं।"

"***बेटा प्रसन्न होकर जाओ, तुम्हारी जीवन यात्रा सफल होगी, तुम्हें गुरु दर्शन अवश्य होंगे, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।***" – ऐसा बोलकर वे पीछे मुड़कर चले गये।

उस तीव्र सुगन्ध का स्मरण कर मैं पुनः भाव विह्वल हो उठा और जब ट्रेन से जोधपुर पहुंचा और गुरुधाम के साधना हॉल में प्रवेश किया तो पूज्य गुरुदेव के संन्यस्त स्वरूप का भव्य चित्र देखकर अचम्भित रह गया। स्टेशन में जो साधू मुझे मिले थे, वे साक्षात यही तो थे। काफी देर तक मैं रोता रहा इस बात पर कि मैं सद्गुरुदेव जी को पहिचान न सका। इससे पूर्व मैंने पत्रिका में सद्गुरुदेव के गृहस्थ स्वरूप का ही चित्र देखा था। शिविर के अन्तिम सत्र में गुरुदेव के चरण स्पर्श करने के बाद मेरे पैर का दर्द, जिससे मैं पिछले पांच वर्ष से परेशान था, सदा के लिये खत्म हो गया।

– गीताराम कुर्रे, खोंगापानी कॉलरी, कोरिया (म.प्र.)

बचपन में जिनके दर्शन हुए, उनके रहस्य को पचास वर्ष बाद नागपुर शिविर में समझ सकी

मेरी उम्र इस समय साठ से कुछ अधिक है, बचपन से ही आध्यात्मिक प्रवृत्ति थी, जागृत अवस्था में मुझे हवा में रंगबिरंगी साड़ियां, कुंकुम, हल्दी, गुलाल दिखता था। लोग सोचते कि कोई भूतबाधा आदि हुई है, परन्तु काफी दिखाने के बाद भी कुछ नहीं निकला।

१३ वर्ष की आयु में मेरा विवाह हो गया। शादी के डेढ़ वर्ष बाद मुझे स्वप्न में एक साधु के दर्शन हुए – गले में रुद्राक्ष की माला, हाथों में भी रुद्राक्ष, बड़ी जटा और जटा पर भी रुद्राक्ष मालाएं थीं, हाथ में कमण्डलु, झोली, डण्डा, और भगवे वस्त्र धारण किये हुए थे। वे मुझे डोंगरगांव के जंगल में लेकर गये जहां मेरा बचपन बीता था। वहां बिठाकर मुझे तीन दाने देकर आज्ञा देते हुए शपथ दिलाई कि मैं शक्ति का उपयोग समाज के कार्य के लिये करूं एवं कभी भी पैसे के बारे में न सोचूं।

एक दिन मुझे आसमान में अद्भुत चमकीला प्रकाश दिखाई दिया, जिसे देखकर मैं बेहोश हो गई। इसके बाद अक्सर जब भी कहीं भजन आदि होता है, तो मैं अपनी सुध बुध भूल जाती हूं। **एक दिन महाकाली के दर्शन हुए। तब देवी ने मुझसे पूछा – "तुझे क्या चाहिये?"**

मैंने मांगा – "**आप मुझे गुरु रूप में प्राप्त हों।** मेरे

परिवार वाले मुझे कितना भी कष्ट क्यों न दें, लेकिन मैं लोगों का कुछ भला कर सकूं।'' बस इतना ही मांगा।

इसके बाद लोगों की सहायता करना, परोपकार आदि तो जीवन में मुझसे बहुत हुआ, परन्तु अपने व्यक्तिगत जीवन में घरवालों की ओर से मुझे कई प्रकार की तकलीफें मिलती रहीं, आर्थिक स्थिति नाजुक ही बनी रही। घर के लोग कहते हैं, कि तू सबकी सहायता करती है, परन्तु अपने लिये कुछ नहीं कर सकी।

दिनांक 23.10.1999 को नागपुर में जब साधना शिविर में जाने का प्रथम अवसर मिला तो वहीं पर ***सद्गुरुदेव निखिलेश्वरानन्द जी*** *का चित्र भी देखा जो कि ठीक वही स्वरूप था, जिसका बचपन में मैंने स्वप्न में दर्शन किया था।* अब गुरुदेव मुझे अपने चरणों में जगह देकर मार्गदर्शन करें।

— विमला नारायणराव भिंगारे, मानस मन्दिर के पास, जगवले ले आउट, वर्धा (महा.)

भुवनेश्वरी का ललाट के मध्य और यज्ञ की अग्नि में दर्शन

जैसा आपने आदेश किया था, उसी के अनुरूप मैंने चैत्र नवरात्रि में भुवनेश्वरी साधना सम्पन्न की और मुझे उसमें जो अनुभूति हुई, उसे आपके चरणों में लिख कर भेज रहा हूं—

साधना की चौथी रात्रि को मंत्र जप के पश्चात साधना स्थल पर ही सो रहा था कि रात्रि के १:०० बजे मैंने ऐसा महसूस किया कि मुझे धीरे-धीरे बुखार चढ़ रहा है, सारा शरीर कांपने लगा और नींद खुल गई। ऐसा लग रहा था, कि न तो मैं सो ही रहा हूं और न ही जग रहा हूं, सारे शरीर में मृत्यु का भय सा व्याप्त हो गया। लेकिन इसी बीच गुरु मंत्र का जप स्वतः चलने लगा। ऐसा लग रहा था कि मेरे आज्ञा चक्र पर साक्षात भगवति जगदम्बा विराजमान हैं। मैंने तुरन्त विवेक से सोचा कि जो भी हो रहा है, इससे मेरा अनिष्ट नहीं होगा, क्योंकि हृदय में गुरुदेव की उपस्थिति भी अनुभव हो रही थी।

हृदय में सद्गुरुदेव का और आज्ञा चक्र में भुवनेश्वरी का दर्शन लगातार पांच मिनट तक होता रहा, और इस क्रम में मैं पूर्णतया शान्त हो गया और पुनः झपकी लग गई, लेकिन झपकी लगते ही मुझे लगा जैसे मैंने कोई हाई वोल्टेज बिजली का तार छू लिया हो, फिर से हृदय में सद्गुरुदेव निखिलेश्वरानन्द जी की छवि और आज्ञा चक्र में मां भुवनेश्वरी के बिम्ब का दर्शन करता रहा। यह स्थिति रात्रि में तीन बार हुई, गुरु मंत्र अपने आप चलता रहा। अगले दिन, नवरात्रि की *अष्टमी को हवन सम्पन्न किया तो हवन कुण्ड की लपटों में भी मां की आकृति के दर्शन होते रहे।*

— अरुण कुमार चौबे, कृष्णा सर्जिकल सेन्टर, सय्यद रोड, विकास नगर, देहरादून-२४८१३८ (उ.प्र.)

गाड़ी बीचों-बीच जंगल में अचानक रुक गई

29.11.1999 के दिन मुझे आगरा से दिल्ली जाना था। टिकट लेकर गलती से मैं कर्नाटक एक्सप्रेस के स्लीपर कोच में बैठ गया। आधे घण्टे बाद गाड़ी में टी.टी. आ गया और कोच में बैठे चार-पांच आदमियों को जुर्माना कर दिया, मुझसे भी मांगने लगा। मैं बोला गलती से मैं इस कोच में बैठ गया हूं, अगले स्टेशन पर उतर जाऊंगा। वो बोला गाड़ी बीच में नहीं रुकेगी, सीधे दिल्ली पहुंचेगी, इसलिये तुम्हें पेनाल्टी (जुर्माना) देनी पड़ेगी। मैं मन ही मन गुरुदेव का स्मरण कर रहा था, क्योंकि मेरे पास पैसे किसी खास कार्य के लिये ही थे। तभी मैंने देखा कि अचानक गाड़ी बीचों-बीच जंगल में रुक गई, और मैं उतर कर जनरल डिब्बे में जाकर बैठ गया। दो मिनट देर बाद ट्रेन चली। हो सकता है, कि इसे संयोग कहा जाए, परंतु मेरा हृदय कहता है, कि गुरुदेव ने मुझे बचाया।

— अम्बरीश शर्मा, ए-२३३, विद्युत नगर, अजमेर रोड, जयपुर - ३०२०२१ (राज.)

जब समय आयेगा, तो मैं खुद ही मानसरोवर ले चलूंगा

मेरे जोड़ों में दर्द रहता है और शरीर का बायां भाग कमजोर है, २२ नवम्बर १९९८ को चण्डीगढ़ शिविर में मैंने **धन्वंतरी रोग निवारण दीक्षा** ली थी। दिनांक ९.४.१९९९ को परिवार में ही कुछ क्लेश हो गया, खूब बहस हुई, और अंत में मैंने निर्णय किया कि अब मैं जीना ही नहीं चाहती। मुझे गुरुजी अपने पास बुला लीजिये, सारी रात उलझन में जागती रही, गुरु चित्र के सामने रोती रही, सुबह ३:३० पर मुझे नींद आ गई। मैंने देखा कि सद्गुरुदेव सिंहासन पर बैठे मुस्कुरा रहे हैं। मैंने रोते हुए गुरुजी के पांव पकड़ लिये, तो गुरुजी कुर्सी समेत ही आकाश में उड़ने लगे, मैंने भी पांव नहीं छोड़ा। गुरुजी मानसरोवर झील पर उतरे, मैंने पानी से मुंह धोया, मैं झील में नहाना चाहती थी, परन्तु गुरुदेव ने नहाने नहीं दिया और कुर्सी सहित दुबारा उड़ने लगे तो मैंने तुरन्त उनके चरण कसकर पकड़ लिये। वे चरण छुड़ाते रहे, मैं रोती रही।

सद्गुरुदेव बोले — ''अभी तुम्हारे जाने का समय नहीं है बेटी, छोटे की शादी करनी है, दोनों बेटों के पोते-

सतियों को देखना है। *जब समय आयेगा, मैं खुद ही मानसरोवर झील के पास स्नान करवाने ले जाऊंगा।'* और गुरुजी अपना पैर छुड़ाने का प्रयत्न करते रहे।

छीना झपटी में गुरुजी की कुर्सी का एक पांव मेरे मुंह पर जोर से लग गया, मेरी चीख निकल गई और हाथ छूट गये, मैं धड़ाम से नीचे गिरी। नींद खुली तो देखा मैं बिस्तर से नीचे जमीन पर पड़ी हूं। मेरी मुट्ठियां भिंची थीं, मेरे होंठ सचमुच सूज गये थे, मैं अभी भी उसी तरह बोलती जा रही थी कि गुरु जी मुझे ले चलो। मेरी आवाज सुनकर अन्य सदस्य भी आ गये और मुझे जमीन पर बैठा देख आश्चर्य चकित रह गये। इससे पूर्व मैं शारीरिक लाचारी के कारण जमीन पर बैठ नहीं सकती थी। परन्तु इस **स्वप्न के बाद मैं खुद उठ कर चलने लगी, हाथ मुंह धोया, जबकि इसके पूर्व मैं बिस्तर से उठ भी नहीं पाती थी।** मैं अब गुरु मंत्र का स्मरण करने लगी हूं और गुरु जी की मुझे कई बार झलक मिल जाती है।

— सन्तोष शर्मा, १२७/७, पवन नगर, अमृतसर.

राम रक्षा स्तोत्र से अनिष्ट टला

30.10.1999 को मैं और मेरा ट्रक मालिक पंजाब से सहारनपुर जा रहे थे, हमारी गाड़ी के आगे एक टैंकर जा रहा था। अचानक टैंकर के आगे से तीन-चार फौजी सड़क पार करने लगे, टैंकर के ड्राइवर ने उन्हें बचाने के लिये एकदम ब्रेक लगाई और हमारी गाड़ी बुरी तरह टैंकर से जा टकराई, परन्तु हम दोनों ही आश्चर्यजनक रूप से बच गये, जबकि ट्रक को काफी नुकसान हुआ था। इस यात्रा का प्रारम्भ करने के पूर्व मैंने मानसिक रूप से संक्षिप्त गुरु पूजन कर अक्टूबर-९९ अंक की पत्रिका में दिये **'राम रक्षा स्तोत्र'** का एक बार पाठ किया था, जो कि गुरु आशीर्वाद से कल्याणकारी सिद्ध हुआ।

— अनिन्दर कुमार, ववकेहड़ा (उपरला),
अजोली, रोपड़-१४०१२५ (पंजाब)

घर पर बिजली गिरी, पर मेरी प्राण रक्षा हुई

दिनांक २२ मई १९९९ को गुरु दीक्षा प्राप्त करने के बाद मैं नियमित गुरु मंत्र का जप आदि करता हूं। दिनांक १२ सितम्बर १९९९ की रात्रि में दो बजे मेरे साथ एक आश्चर्यजनक घटना घटी। बादल की तेज गर्जना के साथ आकाश से बिजली मेरे घर पर गिरी, तो पूजा स्थान पर जहां गुरु चित्र रखा था, वहां से बिजली थोड़ी दूर से ही लौट गई। इसके बगल वाले कमरे में जहां मैं सो रहा था, वहां से भी *बिजली बिना मुझे स्पर्श किये थोड़ी दूर से लौट गई, जबकि इसके अलावा पूरा घर आग के अंगारे जैसा हो गया था और घर की गौशाला में बंधा एक बैल मर गया।* गुरु दीक्षा और गुरु मंत्र जप किस प्रकार साधक को एक अभेद्य रक्षा कवच प्रदान करता है, रात्रि की इस घटना से मुझे अनुभव हो गया।

— बाबूलाल वरकड़े, मेढ़ापानी, पाढ़र, बेतूल (म.प्र.)

यंत्र में गुरुदेव की उपस्थिति अनुभव होती है

मैंने फोटो भेजकर गुरु दीक्षा प्राप्त की थी। पर्याप्त न्यौछावर राशि न होने के कारण मैं गुरु यंत्र प्राप्त न कर सकी थी। परन्तु पता नहीं शायद गुरुदेव ने करुणावश मुझे गुरु यंत्र निःशुल्क ही भेज दिया जो कि डाक द्वारा मुझे दिनांक ५ जुलाई १९९८ को प्राप्त हुआ। इस यंत्र में मुझे कई बार गुरुदेव की उपस्थिति का आभास हुआ है, और इसमें से आवाज भी सुनाई दी है। एक दिन मैंने स्वप्न में देखा कि एक मन्दिर में कुछ लोग हवन सम्पन्न कर रहे हैं, स्तोत्र पाठ कर रहे हैं, थोड़ी दूर मैं भी खड़ी हूं। तभी हवन कुण्ड से चार ज्योति निकल कर दुर्गा जी की मूर्ति में समा गई। जब नींद खुली तो आस-पास पूर्ण रूप से **पूज्य गुरुदेव श्री कैलाशचन्द्र श्रीमाली** जी ही नजर आने लगे। थोड़ी देर बाद मैं सामान्य हुई। इसके बाद से मेरी रीढ़ के मूल में रेंगने जैसा कुछ आभास होता है। मार्गदर्शन करें।

— रंजना, बठेना वार्ड, धमतरी, रायपुर-४९३७७३

जम्मू तक गाड़ी को किसी ने रोका नहीं

१० अप्रैल १९९९ को मुझे बच्चों के पास कठुआ से जम्मू वापस आना था, घर पर बच्चे अकेले थे। उस दिन ट्रांसपोर्टरों ने हड़ताल कर दी थी, सभी बसें, छोटी और बड़ी सभी गाड़ियां चलना बन्द हो गई थीं। अगर कोई गाड़ी जाती तो रास्ते में पत्थर मार-मार कर गाड़ी रोक कर बंद करा देते थे। मैं संकट में फंस गई कि घर में छोटे बच्चे अकेले हैं, मैंने सद्गुरुदेव के मंत्र का जप शुरू कर दिया। थोड़ी देर बाद पंजाब की एक गाड़ी आई, मैं उस पर बैठ गई, पूरे रास्ते गुरु मंत्र का जप करती रही कि कोई अड़चन न आए। जब गाड़ी जम्मू पहुंच गई तब उसे रोक लिया गया, उसके पहले नहीं, इस प्रकार मैं सकुशल घर पहुंच सकी।

— श्रीमती जवाहर ज्योति खजूरिया, ५४, गली
कुच्छा नरसिंह, पंजतीर्थि, जम्मू.

डरावने स्वप्नों से मुक्ति

गुरुदेव से दीक्षा लेने के पूर्व मैं कई वर्षों से कई रोगों से बीमार चल रहा था, और अक्सर डरावने सपने आया करते थे, कई प्रकार की झाड़-फूंक आदि कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ था। पिछले वर्ष दीक्षा प्राप्त करने के बाद मुझे सितम्बर-९९ में **वन्दनीय माता जी, पूज्य गुरुदेव श्री कैलाश चन्द्र जी एवं पूज्य गुरुदेव श्री अरविन्द श्रीमाली** जी के प्रातः काल स्वप्न में दर्शन हुए। माताजी ने अत्यन्त वात्सल्य भाव से भयमुक्त होने का आशीर्वाद दिया। इसके पश्चात फिर मुझे डरावने स्वप्न आने बन्द हो गये, अब मैं बिल्कुल हृष्ट-पुष्ट हूं।

– इन्दीश कटियार, बी-१/५०, सेक्टर-के,
अलीगंज, लखनऊ (उ.प्र.)

तुझे तारा साधना में सिद्धि मिलेगी लेकिन थोड़ा विलम्ब होगा

मैं एक शिक्षित ग्रामीण युवक हूं। वर्ष १९९४ में एक दिन मुझे इष्ट देव 'कल्लाजी' **(कुलदेवता)** ने स्वप्न में दर्शन देकर पहली बार कहा कि मेरा नाम 'कल्याण' है, अतः तेरा कल्याण होगा। उस वचन के कुछ समय बाद ही मुझे पूज्यपाद गुरुदेव डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली जी की पुस्तक '**तांत्रिक सिद्धियां**' पढ़ने को मिली। इससे पूर्व मैं साधना आदि के बारे में नहीं जानता था, और मैं सोचने लगा कि इस पुस्तक में जो साधनाएं दी हैं, वे सत्य हैं भी या नहीं, परन्तु स्वप्न में पुनः कल्लाजी ने कहा कि "**सभी साधनाएं सत्य हैं।**"

इसके बाद मैंने बगलामुखी साधना को प्रारम्भ किया, परन्तु साधनाओं की पूरी प्रक्रिया न जानने के कारण मुझे उसमें जरा भी सफलता न मिली। कुछ माह बाद मैंने **तारा साधना** को शुरु किया, इसमें भी कुछ अनुभव नहीं हुआ, बार -बार इसी साधना को दुहराने पर एक दिन मुझे **सद्‌गुरुदेव डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली जी** के दर्शन हुए, उन्होंने मेरे माथे से कुछ बाल उखाड़ कर सामने एक वृक्ष की ओर जाने के लिये कहा। उन्होंने यह कहा – "***बेटा! उस वृक्ष का फल ले आ! उस फल से ही सारे मनोरथ पूर्ण होंगे।***" मगर मैं उस वृक्ष के पास जा नहीं पा रहा था। इसके बाद मुझे कभी कभी पूज्य गुरुदेव के दर्शन होने लगे।

एक दिन मुझे स्वप्न में लम्बी जटाओं वाले एक महाराज जी दिखाई दिये, जो शायद **निखिलेश्वरानन्द जी** रहे होंगे। मैंने उनसे पूछा कि मुझे तारा साधना में सफलता **कब** मिलेगी? उन्होंने **कहा** – "*बेटा तुझे साधना में सिद्धि मिलेगी पर थोड़ा विलम्ब होगा।*"

एक बार मुझे देवी तारा के दर्शन हुए, वे मुझे कोई चीज देकर कह रही थीं कि इस वस्तु से ही तेरे कार्य सिद्ध होंगे। परन्तु यह दर्शन मुझे स्वप्न में हुआ था और वह कौन सी चीज थी, और उसे कैसे प्राप्त किया जाए, यह मुझे मालूम नहीं है। साधना के दौरान एक बार मुझे लगा कि किवाड़ खटका है। अगले दिन बच्चों को झूला झुलाने वाला पालना जो ठीक मेरे ऊपर टंगा था, अपने आप हिलने लगा। दो दिन तक फिर कुछ नहीं हुआ, ग्यारहवें दिन दो तीन कनखजूरे निकले जो आसन के चारों ओर घूम-घूमकर चक्कर लगाते रहे, कभी आसन के नीचे छिप जाते तो मैं उठकर खड़ा हो जाता या हिल-डुल जाता। इस बार इतना ही हुआ।

कुछ समय बाद पुनः इस साधना को यंत्र, माला आदि से विधिवत प्रारम्भ किया, ग्यारहवें दिन तारा मंत्र की १०१ माला पूरी करके सोया था कि देवी ने आकर मेरे बाल पकड़ लिये और जोर जोर से खींचकर हिलाने लगीं। यह क्रिया लगभग पांच मिनट तक चलती रही और फिर अपने आप बन्द हो गई। चारों ओर की जमीन हिलने लगी। मुझे इस अनुभव से लगने लगा कि अब मुझे सिद्धि मिल जायेगी। बारहवें दिन मेरा कान बन्द हो गया, अन्दर से 'सन-सन्न-सनन' का गुंजरण सा आने लगा। तेरहवें दिन १०१ माला तारा मंत्र की जप कर सोया तो देवी ने आकर गला पकड़ लिया और मुझे घसीटने लगी। मैं अधकच्ची नींद में चिल्लाता रहा कि मुझे पीड़ित मत करो। थोड़ी देर में मुझे लगा कि मेरी झोपड़ी जिसमें मैं साधना करता हूं, मेरे ऊपर आ गिरी है। परन्तु इसके बाद सब शान्त हो गया। साधना के आगे के दिनों में फिर कोई चमत्कार नहीं हुआ।

अब तक इसी साधना को मैं कई बार सम्पन्न कर चुका हूं। बीच बीच में कभी कभी कोई अनुभूति हो भी जाती है, लेकिन सिद्धि अभी तक नहीं मिल सकी है। गुरुदेव! आप कृपा करें।

– मणीलाल डामोर, पटेलिया, अडोर, मढ़ी, बांसवाड़ा-३२७०३४ (राज.)

गुरु ... 3 ... विशिष्ट ... में श्री ... आदर्श ... इष्ट-... मथुरा ... शिष्यों ... आभा ... में आग ... सनकल ... शिविर ... किसी ... यहीं ... रहता है ... कर उन ... उनकी ... हो तो ... दे दी ... कहा। ... प्रभु ... और उ ... दैन्य से ... गया औ

गुरु शिष्य सम्बन्ध

निहितं ब्रह्म यो वेद परमे व्योम्नि संज्ञिते

(ब्रह्म को मात्र विद्या या सत्यज्ञान से ही जाना जाता है)

ब्रह्म तत्वमसि भावयात्मनि

आज से प्राय: पांच सौ वर्ष पूर्व वैष्णव सम्प्रदाय में प्रसिद्ध पुष्टिमार्गीय संत विचारक और तत्ववेत्ता हुए हैं **श्री वल्लभाचार्य जी** जिन्होंने विशिष्टाद्वैत मत का प्रतिपादन किया। भारतीय दर्शन के क्षेत्र में श्री वल्ल चार्य जी का स्थान भगवत्पाद श्री आद्यशंकराचार्य के समकक्ष माना गया है।

एक अवसर का प्रसंग है श्री वल्लभाचार्य जी अपने इष्ट-भगवान श्रीकृष्ण की जन्मभूमि मथुरा में दर्शन करने पश्चात अपने शिष्यों से भेंट करते व उन्हें ज्ञान की आभा से दीप्त करते रुनकता (वर्तमान में आगरा जनपद में) की ओर बढ़ चले। रुनकता में जब वे विश्राम हेतु अपने शिविर में विश्राम कर रहे थे तभी उनके किसी शिष्य ने उनसे निवेदन किया कि यहीं पर **सूरदास** नाम का एक साधु रहता है जो भगवत्-भक्ति में पदों को रच कर उन्हें बड़े मधुर कंठ से गाता है, यदि उनकी (श्री वल्लभाचार्य जी की) आज्ञा हो तो उसे बुलाया जाए। श्री वल्लभाचार्य जी ने सहर्ष अनुमति दे दी और सूरदास समक्ष आए।

श्री वल्लभाचार्य जी ने सूरदास से पद सुनाने को कहा। सूरदास ने अपना तानपुरा सम्भाला और पद सुनाया . . . ***प्रभु हौं सब पतितन को टीको।***

श्री वल्लभाचार्य जी को कुछ विशेष रुचिकर न लगा और उन्होंने कोई दूसरा पद सुनाने को कहा। सूरदास ने फिर दैन्य से भरा एक पद गाया तो श्री वल्लभाचार्य जी से न रहा गया और वे बोल पड़े— **नाम तो तेरा है शूर और घिघिया रहा है ऐसे, क्यों? कुछ प्रभु लीला के रंगों का वर्णन क्यों नहीं करता?**

प्रत्युत्तर में सूरदास बिलख पड़े और बोले— ***गुरुदेव! मैं ठहरा जन्मांध, मैंने जीवन के प्रारम्भ से बस एक ही रंग देखा है और वह है काला! मैं प्रभु लीला के रंगों का वर्णन करूं भी तो कैसे करूं?***

सूरदास का यह उत्तर सुन कर श्री वल्लभाचार्य जी आंख बंद करके किसी गहन चिंतन में डूब गए और कुछ देर बाद जब उन्होंने आंखें खोलीं तो करुणापूर्ण नेत्रों से सूरदास की ओर देखते हुए बोले— जा! **स्नान करके आ। मैं तुझे आज और अभी दीक्षा दूंगा, तुझे दृष्टि चाहिए न? मैं दूंगा!**

श्री वल्लभाचार्य जी के उपस्थित शिष्यगण आश्चर्य में पड़ गए क्योंकि श्री वल्लभाचार्य जी के विषय में विख्यात था कि वे सहज ही किसी को दीक्षा नहीं देते हैं।

सूरदास ने वैसा ही किया और श्री वल्लभाचार्य जी ने सूरदास को विधिवत् दीक्षा प्रदान की। दीक्षा मिलते ही सूरदास एक अनिर्वचनीय आनन्द में डूब गए, आनन्दातिरेक में उनकी आंखों से आंसुओं का प्रवाह उमड़ पड़ा। घड़ी भर के लिए वे स्वयं में खो से गए और जब उनकी चेतना लौटी तो वे अनुमान से आगे बढ़कर टटोलते हुए श्री वल्लभाचार्य जी के चरणों से लिपट गए।

पुन: प्रकृतिस्थ होने पर श्री वल्लभाचार्य जी ने सूरदास से कहा— **हां शूर! अब कुछ सुना।**

सूरदास ने दीक्षा मिलने के तत्क्षण पश्चात अन्त:प्रेरणा से उपजा जो प्रथम पद गाया वह था . . .

चल री चकई चरन सरोवर, जहां न प्रेम वियोग
जहां कबहुं भ्रम निसा नहीं व्यापत, सोई सायर सुख जोग

यह पद सुन कर श्री वल्लभाचार्य जी ने मंद-मंद मुस्कराते हुए सूरदास से कहा- **अरे शूर! तुझे तो सब कुछ दिखने लग गया है रे! कुछ और देख कर हमें भी तो बता।**

और सूरदास ने उसी समय मानस में उमड़ा एक अन्य पद प्रस्तुत किया . . .

हंसा हंस मिले सुख होई
यहां तो पांति बकुलन की
कदर न जाने कोई . . .

श्री वल्लभाचार्य जी का मुखमंडल असीम करुणा से आप्लावित होकर भीग गया क्योंकि उनका एक और शिष्य हंस बनने की स्थिति में जो आ गया था।

गुरु का तो बस एक ही स्वप्न होता है कि उनका प्रत्येक शिष्य हंस बन सके, वह अपने पंखों को फैलाता हुआ उस सच्चिदानंद रूपी मानसरोवर में अवगाहन कर सके जो मानसरोवर स्वयं उसके भीतर ही निहित है।

भौगोलिक रूप से जो मानसरोवर है वह तो जहां स्थित है वहीं स्थित रहेगा, उसके साक्षात् कभी भी जाकर किए जा सकते है किन्तु जो मानसरोवर अर्थात् मानस रूपी सरोवर स्वयं व्यक्ति में निहित है उसके साक्षात व उसमें अवगाहन तो केवल गुरु से 'दृष्टि' मिलने के बाद ही सम्भव है।

ऐसे मानस रूपी मानसरोवर अर्थात् मूलाधार से सहस्त्रार तक की यात्रा करने के पश्चात ही यह सम्भव हो सकता है कि शिष्य को पूर्णरूपेण आत्मतृप्ति मिल सके, उसके संकल्प-विकल्प समाप्त हो सकें, वह निश्चिंत व निर्भीक हो सके।

जीवन में यदि ऐसा कुछ विलक्षण अर्जित करना है तो आवश्यक है कि शिष्य अपनी '**जन्मांधता**' को छोड़, गुरुदेव की दृष्टि में अपनी दृष्टि को मिला कर उनकी दृष्टि से इस जगत को देखना प्रारम्भ कर दे। गुरु की दृष्टि से देखने के बाद ही इस जगत का कोई सौन्दर्य हमारे नेत्रों के समक्ष उद्घाटित हो सकता है अन्यथा यह जगत तो है ही विसंगतियों से भरा हुआ।

गुरु का अवतरण इस जगत में किसी के घरेलू विवाद सुलझाने या किसी के व्यक्तिगत हित की पूर्ति करने के लिए न होकर जिस अर्थ में होता है वह होता है सम्पूर्ण मानवता के लिए एक दृष्टिबोध प्रस्तुत करना।

यह शब्दों में नहीं वर्णित किया जा सकता कि गुरु को कितनी अधिक वेदना होती है जब उनका कोई शिष्य उनके समक्ष अपनी व्यक्तिगत बातों की प्रस्तुति करने का प्रयास करता है। गुरु का येन-केन-प्रकारेण बस एक ही प्रयास होता है कि उनका शिष्य दृष्टि को प्राप्त करता हुआ अपने उस ब्रह्म स्वरूप का बोध कर ले जिसको हृदयंगम करने के बाद उसे कुछ भी नहीं व्याप्त हो सकता।

यूं जीवन है तो कभी सर्दी-बुखार भी हो सकता है कभी खांसी भी आ सकती है, अब कोई यह अर्थ न लगा बैठे कि मैंने तो दीक्षा ली हुई है फिर मुझे खांसी आई तो कैसे आई!

गुरुदेव द्वारा प्रवर्तित समस्त दीक्षाओं, समस्त प्रवचनों, समस्त युक्तियों का सार बस यही होता है कि शिष्य अपने आत्म स्वरूप का बोध कर ले क्योंकि आत्म स्वरूप में ही ब्रह्म स्वरूप छिपा होता है। भगवत्पाद श्रीआद्यशंकराचार्य विरचित ***विवेक-चूडामणि*** ग्रंथ में **ब्रह्म तत्वमसि भावयात्मनि** (अर्थात् वह ब्रह्म तुम ही हो-मन में ऐसा विचार करो) पद का यही भावार्थ है।

आत्म स्वरूप कहें अथवा ब्रह्म स्वरूप-दोनों में अर्थ का कोई अंतर नहीं, अंतर मात्र इतना ही है कि ब्रह्म स्वरूप कहने की अपेक्षा आत्म स्वरूप कहने से भाव का स्पष्टीकरण शिष्य के मानस में शीघ्रता से हो जाता है।

आत्म स्वरूप का बोध होने के पश्चात ही शिष्य को इस बोधि के प्रथम चरण में ज्ञात हो सकता है कि वह कौन है, गुरु से क्या सम्बन्ध रहे हैं उसके पूर्व जन्मों में या क्यों सौ-सौ बहानों से गुरुदेव प्रयास करते हैं उसे अपने समीप रखने का अन्यथा गुरु को क्या आवश्यकता है किसी शिष्य के रूठ जाने पर सौ-सौ बार मनाने की?

गुरु का तो प्रत्येक प्रयास अपने शिष्य से आत्मीयता विकसित करने का होता है क्योंकि आत्मीयता विकसित हो जाने के बाद ही तो शिष्य आत्मवत् बन सकता है तथा गुरु के आत्मवत् हो गए शिष्य के लिए ही साधनाओं व सिद्धियों का पथ प्रशस्त होता है, अन्य हेतु नहीं।

गुरु का आत्मीय बनना और आत्मीय बनते हुए उनके आत्मवत् बन जाने का मार्ग का कोई बहुत अधिक विस्तीर्ण मार्ग नहीं है। यह तो परस्पर विश्वासों का एक आदान-प्रदान है और ऐसा आदान-प्रदान क्षण मात्र में हृदय के मिलते ही सम्भव हो सकता है-ज्यों नेत्रहीन सूरदास व श्री वल्लभाचार्य के परस्पर मिलन में क्षण मात्र में सम्भव हो गया।

दीक्षा तो अन्तर्मन का मिलन है, इसमें प्रवाह है दोनों ओर से – शिष्य की ओर से अपनी पीड़ा और वेदना का और गुरु की ओर से है शिष्य को अपने भीतर समाहित कर लेने का – बस इतनी ही तो बात है।

ब्रह्म ज्ञान की उपलब्धि, तृतीय नेत्र की प्राप्ति या ब्रह्माण्ड की घटनाओं में परिवर्तन करने की क्षमता – इन सभी का जो मिला जुला स्वरूप है, उसे ही तो योग की भाषा में

आज्ञा चक्र

कहा गया है, जिसके जाग्रत होने पर योगी स्वत: ही 'अहं ब्रह्मास्मि' का उद्घोष कर उठता है

पांचवां चक्र जाग्रत होने पर साधक का अपने सूक्ष्म शरीर से तादात्म्य स्थापित हो जाता है, सूक्ष्म शरीर के माध्यम से वह एक कण के रूप में परिवर्तित होकर किसी भी स्थान पर जाकर पुन: वापिस आ सकता है, इच्छानुसार आकार धारण कर सकता है। विशुद्ध चक्र के बाद जब साधक निरन्तर साधना सम्पन्न करता हुआ कुण्डलिनी साधना के अगले क्रम में प्रविष्ट होता है, तब कुण्डलिनी शक्ति आगे बढ़ते हुए दोनों भौंहों के बीच आज्ञा चक्र पर पहुंचती है। यह आज्ञा चक्र छठा द्वार है, जहां पर कुण्डलिनी जाकर रुकती है।

घटनाओं में हस्तक्षेप करना सम्भव है

विशुद्ध चक्र से साधक दो हजार मील दूर किसी घटना को दूर बैठा तो देख सकता है, परन्तु उसमें हस्तक्षेप करना उसके लिये सम्भव नहीं हो पाता। यदि कहीं कोई एक्सीडेण्ट हो रहा है, तो विशुद्ध द्वारा तो उसका मात्र अवलोकन ही किया जा सकता है, जबकि आज्ञा चक्र के जाग्रत होने पर साधक स्वयं वहां उपस्थित होकर, क्षण मात्र में दुर्घटना से व्यक्ति को बचा सकता है। ब्रह्माण्ड की क्रियाओं को स्वेच्छानुसार मोड़ देना आज्ञा चक्र से सम्भव हो पाता है।

श्राप और वरदान देने की क्षमता

आज्ञा चक्र पर स्थित साधक किसी के भी जीवन में परिवर्तन कर सकता है, किसी को भी श्राप या वरदान दे सकता है, किसी को भी रंक से राजा बना सकता है, और सामान्य से सामान्य व्यक्ति को भी एक अत्यंत तेजस्वी, पराक्रमी और महान व्यक्ति बना सकता है। *उसके मन में उठा विचार फिर कोई विचार भर नहीं रह जाता, एक चैतन्य कुण्डलिनी साधक की मात्र इच्छा भर ही नहीं रह जाती, बल्कि वह विचार तो एक आज्ञा होती है, जिसे मानने के लिये कोई भी व्यक्ति ही नहीं अपितु प्रकृति भी बाध्य हो जाती है।*

विचारों का विसर्जन : ज्ञान की उपलब्धि

पांचवा चक्र जाग्रत होने पर साधक को अपने आत्म का साक्षात्कार हो जाता है, जिससे उसके अन्दर विचारों की अस्त-व्यस्त श्रृंखला समाप्त हो जाती है और 'प्रज्ञा' का जन्म होता है। इस प्रज्ञा से, बुद्धि से, मेधा से साधक अपनी आत्मा के मूल रूप में स्थित हो जाता है। फिर जो कुछ भी उसके मन में उठेगा, वह उसकी प्रज्ञा से उठी, उसकी आत्मा की आवाज होगी। पांचवे चक्र पर स्थित साधक जिस विषय पर चिन्तन करना चाहेगा कर सकेगा, जिस विषय पर सोचना न चाहेगा उसके विचार उसे आयेंगे ही नहीं। ऐसा इसलिये होगा, क्योंकि वह स्वयं ही अपना मालिक होगा, उसकी आत्मा ही उसका भगवान होगी। परन्तु जो भी विचार होंगे, जो भी चिन्तन होगा वह उसकी आत्मा का होगा, उसका स्वयं का होगा। लेकिन जब साधक आज्ञा चक्र पर पहुंचता है, तब विचार करने की प्रवृत्ति ही समाप्त हो जाती है, क्योंकि यहां आत्मा का पृथक

स्वरूप शेष ही नहीं रह जाता। इस स्तर पर साधक को ब्रह्म शरीर की उपलब्धि होती है, जिससे उसकी आत्मा और ब्रह्म में जो द्वैत भाव है वह समाप्त हो जाता है। साथ ही शुद्ध ज्ञान का उदय होता है, ब्रह्म ज्ञान का उदय होता है।

द्वैत भाव से मुक्ति

पांचवे चक्र में 'मैं' का भाव तो समाप्त हो जाता है, परन्तु 'हूं' का भाव बचा रहता है। अर्थात पांचवे चक्र पर साधक को अहंकार तो नहीं रह जाता, परन्तु यह बोध उसे अपने होने का बोध अवश्य रहता है, उसे यह भी ज्ञात होता है, कि उस जैसे अनेक और भी हैं। होने का यह बोध उसकी आत्मा का अनुभव होता है, क्योंकि वह अपनी आत्मा के दर्शन कर रहा होता है। परन्तु जब कुण्डलिनी शक्ति आज्ञा चक्र में पहुंचती है, तो 'मैं' और 'तू' का भेद पूरी तरह विसर्जित हो जाता है, '**इसमें**' और '**उसमें**' कोई अंतर नहीं रह जाता, एक आत्मा और दूसरी आत्मा का भेद समाप्त हो जाता है, साधक को यह बोध हो जाता है, कि सबमें एक ही ब्रह्म का निवास है, जो परमात्मा है।

यह अनुभूति ठीक वैसी ही होती है, जैसे डाल पर लगा पत्ता पहले तो यह सोचे कि मैं एक पत्ता हूं, फिर सोचे कि नहीं केवल मैं ही पत्ता नहीं, मेरा अस्तित्व तो है, परन्तु मेरे जैसे और भी पत्ते हैं और उनमें मुझमें जरा भी भेद नहीं है, क्योंकि हम दोनों ही एक डाल से लगे हुए हैं, और हम दोनों की उत्पत्ति उसी जल और खाद से हुई है जो इस डाल से हम दोनों को प्राप्त हुआ है, इस प्रकार हम दोनों में जरा भी भेद नहीं है। इसी चिन्तन का विस्तार होते हुए पेड़ की उस डाल के अन्य पत्ते ही नहीं, सभी शाखाओं के पत्ते, बल्कि पूरा वृक्ष, और मात्र एक वृक्ष ही क्यों, संसार भर के वृक्ष और जीव सभी तो उसी जल, वायु, और पंच तत्वों से निर्मित व पोषित होते हैं, तो फिर तत्व दृष्टि से जरा भी भेद नहीं रह जाता। सब का निर्माण एक ही तत्व से हुआ होता है, सबमें वही समाया होता है, यही ब्रह्म दृष्टि होती है, यही अद्वैत चिन्तन होता है, जो आज्ञा चक्र से प्रस्फुटित होता है।
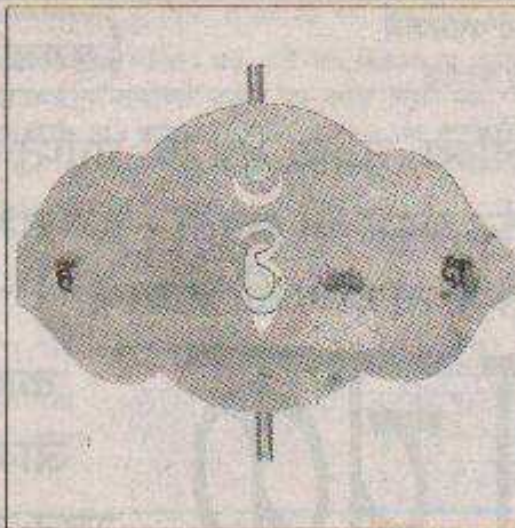
आज्ञा चक्र

नर से नारायण

जब साधक आज्ञा चक्र में पहुंचता है, तो उसे ब्रह्म शरीर की उपलब्धि होती है। उसमें ईश्वरत्व के लक्षण विकसित होने लगते हैं। ईश्वर या अवतारी पुरुषों के, युगपुरुषों के कोई दस हाथ या पैर नहीं होते, उनकी काया कोई पचास फुट की नहीं होती, अपने कर्मों और गुणों से ही कोई इसी मनुष्य योनि में जन्मा जीव ईश्वरत्व तक पहुंच जाता है, और अनेकों मनुष्यों द्वारा फिर युगों युगों तक पूजा जाता है। ईश्वरत्व हो या मनुष्यत्व, पशुत्व हो या देवत्व, सबकुछ इसी मानव देह में तो निहित होता है, कुण्डलिनी शक्ति द्वारा ही जो उसको जाग्रत कर ले, वही साधक की श्रेष्ठता होती है।

आज्ञा चक्र जाग्रत होने के बाद जब ऐसा व्यक्तित्व समाज में लम्बे समय तक जीवित रह जाता है, तब उसकी सुगन्ध छिपाये नहीं छिपती और लोग उसे प्रभावित होने लगते हैं, उसके ईश्वरत्व का, उसकी दिव्यता का एहसास करने लगते हैं। ईश्वर पैदा नहीं हुआ करते, बनते हैं, गुरु के संस्पर्श से, चाहे वे कृष्ण हो या राम हो, उनके जीवन में भी वशिष्ठ और सांदीपन जैसे श्रेष्ठ गुरु हुए, जो इनकी कुण्डलिनी को जाग्रत कर सके। मनुष्य तो सभी एक से ही हैं, विभेद होता ही नहीं, अन्तर तो केवल इतना भर ही है, कि सद्गुरु के शक्तिपात रूप में, दीक्षा के रूप में किसे उस विराट शक्ति की कृपा प्राप्त हो सकी है। और जिसे ऐसी कृपा प्राप्त हो सके, वही मनुष्य धन्य है, सामान्य स्तर से उठा एक ऐसा व्यक्ति फिर इतिहास में और हजारों हजारों वर्षों पर अपनी अमिट छाप युगों-युगों तक छोड़ जाता है। इस तरह आज्ञा चक्र की जाग्रति ही नर से नारायण बनने की क्रिया है।

ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति

आज्ञा चक्र का स्थान ललाट के बीचो बीच होता है, और इसीलिये ब्रह्म ज्ञान के पिपासुओं को भ्रू-मध्य पर ध्यान करने का निर्देश दिया जाता है। '**अहं ब्रह्मास्मि**' का बोध इसी चक्र पर होता है, कि मैं जो हूं वह मैं नहीं अपितु वह ब्रह्म ही है जो मुझमें स्थित है, मैं वही ब्रह्म हूं जिसका कोई ओर छोर नहीं

है, जिसका विस्तार ही यह ब्रह्माण्ड है, जिससे सब दिशाएं उद्भूत हैं, जिससे सब संसार गतिशील है, वही ब्रह्म मैं हूं, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं हूं; जो कुछ भी गोचर-अगोचर, दृश्य-अदृश्य, अन्दर या बाहर है वह सब उसी एक ब्रह्म की झलक है जिसकी छवि मेरे स्वरूप से भासित हो रही है। यह ब्रह्म ज्ञान की सर्वोच्च अवस्था होती है।

मृत्यु के बाद देव योनि की प्राप्ति

मनुष्य की इस देह के भीतर इन चक्रों के समानान्तर ही सात शरीरों की भी मान्यता की गई है। जैसे ही मृत्यु होती है, यह पार्थिव (पहला) शरीर नष्ट हो जाता है, और व्यक्ति को अन्य छः शरीरों में से किसी एक में स्थिति प्राप्त होती है। फिर यदि व्यक्ति का आज्ञा चक्र/विशुद्ध जाग्रत है, तो प्राण छूटने पर उसे देवताओं वाला शरीर या ब्रह्म शरीर प्राप्त होता है।

आभामण्डल का दर्शन

संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, कोई मनुष्य नहीं है, जिसका आभामण्डल नहीं हो। प्रत्येक वस्तु अथवा जीव से निरन्तर एक विशेष रंग की किरणें निःसृत होती रहती हैं, या यों कहें कि किरणों का एक घेरा सा बना रहता है – उसे ही आभामण्डल कहते हैं। पत्थर जैसी जड़ वस्तुओं में भी आभा होती है, उनमें से भी प्रकाश की किरणें फूटती हैं, यद्यपि यह आभा मण्डल काफी मन्द और सुप्त होता है। पेड़ पौधों में यह आभामण्डल अपेक्षाकृत अधिक होता है, पक्षियों और पशुओं में और भी अधिक होता है। मनुष्यों में आभामण्डल और भी अंशों तक जाग्रत होता है।

तीव्र जिज्ञासा आवश्यक

कुण्डलिनी जागरण के क्रम में कई साधकों की कुण्डलिनी दूसरे या तीसरे चक्र में ही अटक कर रह जाती है, और साधकों को यह ज्ञात भी नहीं होता कि उनके दो चक्र जाग्रत भी हैं। कई बार तो पांचवें चक्र तक पहुंचने पर भी साधक को अपनी स्थिति का ठीक से अनुभव नहीं हो पाता, और विभ्रम की इसी स्थिति में कुण्डलिनी की यात्रा रुक जाती है। सहस्रार भेदन करने और सर्वस्व को जान लेने की तीव्र जिज्ञासा यदि बीच में समाप्त हो गई, तो साधक की कुण्डलिनी मात्र किसी एक चक्र में अटक कर ही नहीं रह जाती, वरन कई बार वह नीचे के चक्रों में वापस गिर भी जाती है। अतः जिज्ञासा को निरन्तर प्रज्वलित किये रहना चाहिये। तीव्र जिज्ञासा साधना के लिये ही नहीं, किसी भी लक्ष्य प्राप्ति के लिये आवश्यक है ही।

जब साधक का तीसरा चक्र जाग्रत होने लगता है, तभी से उसे अन्य लोगों के आभामण्डल का आभास होने लगता है। आगे के और चक्रों के जाग्रत होने पर आभामण्डल का दर्शन और भी स्पष्ट हो जाता है। इस आभा मण्डल को देखकर साधक किसी भी व्यक्ति के बारे में कई बातें पहले से ही जान सकता है। यदि कोई वृक्ष/व्यक्ति किसी रोग से ग्रस्त है, तो साधक उस वृक्ष के आभामण्डल को देखकर ही बता देगा कि चन्द दिनों में यह सूख जायेगा या पुनः ठीक हो जायेगा।

यदि कोई व्यक्ति दो क्षण में क्रोध करने वाला है, तो साधक को पहले से ही ज्ञात हो जायेगा कि सामने वाला व्यक्ति क्रोध करने वाला है। क्योंकि क्रोधी के क्रोध करने के पूर्व ही उसके विचारों की संवेदनशीलता के कारण उसके आभामण्डल का रंग परिवर्तित होने लगता है। यदि कोई झूठ बोलने वाला होगा, तो उसके आभामण्डल में स्पष्ट रूप से रंग परिवर्तन होने लगेगा, जिससे किसी भी चैतन्य साधक के समक्ष स्पष्ट हो जायेगा, कि अगला व्यक्ति झूठ बोलेगा।

रंग का मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है, और मन की स्थिति के अनुरूप ही आभामण्डल का रंग भी बदला हुआ नजर आता है। यदि लाल रंग से रंगे कमरे में, लाल रोशनी में बैठें, तो अपने आप रक्तचाप बढ़ जायेगा, अस्वस्थता हो जायेगी। यदि नीले रंग से रंगी दीवारों वाले कमरे में जाएं, तो रक्तचाप अपने आप ही कुछ कम हो जायेगा। सफेद वस्त्र पहनने पर स्वतः ही मन शुद्ध व ताजा अनुभव करने लगता है, काला वस्त्र पहनने पर भारीपन व तामसी भाव अधिक अनुभव होता है; पीला वस्त्र धारण करने पर पवित्रता, साधनात्मक ओज अनुभव होता है। यह अनुभव द्वारा पाये गये तथ्य हैं। इन्हीं तथ्यों की पुष्टि तब होती है, जब वास्तव में व्यक्ति के आंतरिक भावों के बदलने पर आभामण्डल के रंग भी बदलने लगते हैं।

विशुद्ध जाग्रत होने पर आभामण्डल में श्वेत रंग की प्रधानता होती है, श्वेत प्रकाश होता है आत्मा का। जबकि आज्ञा चक्र पर पहुंचने के बाद जब साधक ब्रह्म शरीर में स्थित हो जाता है, तब आभामण्डल गेरुए रंग का हो जाता है। इसी रंग को पुष्ट करने हेतु ब्रह्म ज्ञान के आकांक्षी संन्यासी गेरुए वस्त्र धारण करते पाये जाते हैं; यह ब्रह्म ज्ञान की तेजस्विता का रंग है। सहस्रार जाग्रत होने पर आभामण्डल में पीले वर्ण की प्रधानता होती है। रंगों का महत्व तो होता ही है, इसीलिये अलग अलग प्रकार की साधनाओं में अलग अलग रंगों के वस्त्रों के चयन का निर्देश दिया जाता है।

आज्ञा चक्र जाग्रत होने पर साधक किसी के भी आभामण्डल का भली प्रकार अवलोकन तो कर ही सकता है, साथ ही उसके वर्ण विन्यास, रंग के क्रम में भी स्वेच्छानुसार परिवर्तन कर सकता है। और इस प्रकार आभामण्डल में संशोधन कर वह किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व में भी अनुकूल परिवर्तन ला सकता है। *जो इच्छा हो, वैसा कर देना या दूसरे से करवा लेना इसी को तो आज्ञा देने की और आज्ञा मनवाने की क्षमता प्राप्त करना कहते हैं। प्रकृति में ऐसा ही आज्ञापूर्वक परिवर्तन कर देने की क्षमता इस चक्र में निहित होती है।*

कई कई जन्मों का चलचित्र की भांति दर्शन

पांचों तत्वों में से आकाश तत्व में सर्वाधिक स्पन्दन होता है, इस आकाश तत्व का ही प्रतिनिधित्व विशुद्ध में होता है। परन्तु आकाश से भी अधिक स्पन्दन दिव्य शक्तियों में होता है जो कि आज्ञा चक्र पर केन्द्रित होती हैं। आज्ञा चक्र को ही **'तीसरा नेत्र'** या **'दिव्य नेत्र'** कहा गया है। इसके जाग्रत होने को ही छठी इन्द्रिय या 'सिक्स्थ सेन्स' का जाग्रत होना कहा जाता है। ऐसा होने पर साधक किसी के भी भाग्य चक्र को, उसके कई कई जन्मों के कर्मों को अपने आज्ञा चक्र पर एक चलचित्र की भांति कुछ क्षणों में ही देख सकते हैं।

आज्ञा चक्र : शास्त्रोक्त स्वरूप

आज्ञा चक्र का स्वरूप दो दलों वाले एक श्वेत कमल के समान है, जिसके अन्दर सूक्ष्म रूप से 'मनस तत्व' विद्यमान है। कमल के मध्य में एक त्रिकोण है, जिसमें 'प्रणव' (ॐ) बीज स्थित है। इसके दो दल 'सूर्य' व 'चन्द्र' के क्रमशः दाहकता युक्त तथा शीतलतायुक्त गुणों से सम्पन्न है। दलों में निहित शक्तियां इस प्रकार हैं –

हं – इस दल की शक्ति से साधक के नेत्रों में अत्यंत तेजस्विता आ जाती है, जिससे वह किसी भी वस्तु को क्षण में भस्म कर सकता है। इसी दल की शक्ति से जब राम ने क्रोधयुक्त होकर लंका जाते समय समुद्र को देखा था, तब समुद्र को घबराकर प्रकट होकर क्षमा याचना करनी पड़ी थी। इसी तृतीय नेत्र की ज्वाला से भगवान शिव ने दक्ष का यज्ञ विध्वंस किया और कामदेव को भस्म किया था।

क्षं – दूसरे दल से करुणा, प्रेम, ममत्व और सृजनात्मक क्षमता प्राप्त होती है, जिसके कारण वह दुःखी जीवों को सुख और शान्ति प्रदान कर सकता है, मात्र दृष्टिपात से निर्धन को सम्पन्न, असफल को सफल बना सकता है, सिद्धियां प्रदान कर सकता है, किसी को भी पूर्णता दे सकता है।

साधना विधान

इस साधना को किसी भी दिन प्रातः प्रारम्भ करें। सामने चौकी पर सफेद वस्त्र बिछाकर उसपर चावल से एक छोटा से गोला बनाएं, उसके भीतर कुंकुम से 'ॐ' लिखें। गोले के बाईं ओर कुंकुम से 'हं' और दाईं ओर 'क्षं' लिख दें। 'ॐ' के ऊपर **मंत्र सिद्ध विशिष्ट दिव्य प्राण प्रतिष्ठित 'आज्ञा चक्र यंत्र'** का स्थापन करें। अपने आसन पर बैठ जाएं और ५ मिनट तक सद्गुरु का भ्रू मध्य ध्यान करें –

हं ॐ क्षं

भ्रू मध्य ध्यान – साधक धीरे धीरे श्वास को अन्दर लेकर बाहर छोड़ें, इस प्रकार की क्रिया लगभग दो तीन मिनट तक करें। जब मन शान्त हो जाए, तब ललाट के मध्य में भृकुटि स्थान पर अपने इष्ट का बिम्ब देखने का प्रयास करें। पहले कुछ प्रकाश दिखाई देगा, प्रकाश का रंग कुछ भी हो सकता है, यह अलग अलग चित्त वाले साधकों के लिये अलग हो सकता है। बाहरी शोरगुल और आवाज से कटते हुए उस प्रकाश में अपने को निमग्न करने का प्रयास करें। जो दिखे उसका आनन्द लें, जब तक अच्छा लगे ध्यान में रहें, फिर आंखें खोलकर गुरु चित्र के समक्ष शीश झुका कर प्रणाम करें। इसके बाद सिन्दूर लेकर यंत्र पर १०८ बार गुरु मंत्र का उच्चारण करते हुए तिलक करें।

दोनों हाथों में पुष्प लेकर आज्ञा चक्र की अधिष्ठात्री देवी 'हाकिनी' का ध्यान करें और पुष्प को यंत्र पर चढ़ायें –

अज्ञानामाम्बुजं तद्धिमकर सदृशं ध्यानाधाम प्रकाशम्।
हक्षाभ्यां वै कलाभ्याम् परिलसित वपुर्नेत्र पत्रं सुशुभ्रम्।।
तन्मध्ये हाकिनी सा शशिसम धवला वक्त्रषट्कम दधाना।
विद्यां मुद्रां कपालं डमरु जपवटीं बिभ्रती शुद्धचित्ता।।

फिर 'प्राण संजीवित कुण्डलिनी जागरण माला' (पहले के पांच चक्रों की साधनाओं में प्रयुक्त माला का प्रयोग किया जा सकता है) से निम्न मंत्र की २ माला ३० दिन तक नित्य जप करें –

आज्ञा चक्र जागरण मंत्र

॥ ॐ हं शिवनेत्रं जाग्रय उद्भावय क्षं ॐ शं ॥

Om Ham ShivNetram Jaagray Udbhaavay Kshaa Om Sham

एक माह बाद जब साधना समाप्त हो जाये, तब यंत्र को पूजा स्थान में गुरु चित्र के समीप रख दें। माला को अगले चक्र की साधना के लिये सुरक्षित रख दें। यंत्र को साधना सम्पन्न होने के एक वर्ष बाद जल में प्रवाहित कर दें।

(इस साधना की सामग्री केवल गुरु आज्ञा होने पर ही भेजी जायेगी।)

दीक्षा

सर्व शान्ति दीक्षा

मनुष्य की समस्त चेष्टाओं का अर्थ क्या है? और क्या है उसके समस्त क्रियाकलापों का उद्देश्य? क्योंकि यह अनायास तो नहीं हो सकता कि व्यक्ति सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक किसी उधेड़बुन में पड़ा रहे। आखिर किस लिए . . .

ओम् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष (गुं) शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व (गुं) शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

जो शान्ति सर्वत्र द्युलोक में है, जो शान्ति अन्तरिक्ष में है तथा जो शान्ति पृथ्वी पर है वही शान्ति जल, औषधि, एवं वनस्पतियों में भी है। समस्त देवताओं के चित्त में, ब्रह्म लोक में तथा समस्त ब्रह्माण्ड में जो शांति है वही शान्ति मुझे भी प्राप्त हो।

यजुर्वेद में प्रतिध्वनित किसी अज्ञात ऋषि की यह वाणी आज भी उतनी प्रासंगिक है जितनी कि यह अपने सृजन के क्षणों में रही होगी क्योंकि काल के अंतराल से भले ही सब कुछ परिवर्तित हो जाए — जो नहीं परिवर्तित हो सकता है वह होता है मनुष्य का अन्तर्मन।

किसी आवरण से मूल का परिवर्तन सम्भव नहीं होता है और सभ्यता-संस्कृति के आवरण परिवर्तन के साथ मनुष्य का जो परिवर्तित हो रहा है वह केवल उसका बाह्य आवरण भर ही है अन्यथा जिस प्रकार से पूर्व में मनुष्य हास्य-विषाद युक्त होता था क्या उसमें कोई अंतर परिलक्षित होता है?

वस्तुतः आज जो परिवर्तित सी हो गयी प्रतीत होती है वह है मनुष्य की जीवन शैली, किन्तु यह किसी व्यापक या मूलभूत परिवर्तन की परिचायक तो नहीं कही जा सकती और वर्तमान की इसी जीवन शैली की दृष्टि से देखने पर आज जो बात पुनः सर्वाधिक प्रासंगिक हो गयी दिखती है वह है कि मनुष्य के अन्तर्मन को एक शान्ति की (पहले की अपेक्षा कहीं अधिक) प्रबल आवश्यकता है।

यहां शान्ति से हमारा तात्पर्य किसी ध्वनि प्रदूषण या noise pollution की समस्या के निराकरण से नहीं है वरन् उस शान्ति से है जो अन्तर्मन की शान्ति होती है। **शान्ति शब्द का जो मर्म है वह मात्र इतना ही है कि व्यक्ति अपने मनोवांछित ढंग से स्वयं को स्वयं में एकाग्र कर सके।**

एकाग्रता की इस क्रिया को जहां एक योगी चैतन्य रूप में सम्पन्न करता है वहीं सांसारिक व्यक्ति अस्पष्टता, भ्रम, सन्देह और अवचेतन मानस के साथ करने का प्रयास करता रहता है।

किसी संगीत की तरंग के साथ स्वयं को बेहद हल्का महसूस करने लग जाना या मानवीय संवेदनाओं से भरी कोई फिल्म देखते हुए भावों में डूब कर किसी और जगत में पहुंच जाना, भावनाओं के किन्हीं उद्रेकों में स्वयं को (भले ही कुछ पलों के लिए) इस संसार से कटा हुआ अनुभव करने लग जाना, आंखों से आंसुओं की लड़ी का निकल चलना और कुछ देर के बाद स्वयं को शांत-प्रशांत अवस्था में पाना — क्या

ये सब क्रियाएं अनायास या महज भावुकता में होने वाली क्रियाएं हैं?

क्या रहस्य छुपा होता है ऐसे पलों में? क्या केवल कोई सांसारिक कारण होता है इनके पीछे या कुछ अधिक विस्तृत भावभूमि होती है इनके मूल में?

जीवन के ऐसे पलों में जो प्राप्त होता है वास्तव में वही शान्ति होती है क्योंकि उस समय हम इस जगत के क्षुद्र भावों से कुछ पृथक जो हो जाते हैं . . . और खो जाते हैं भावनाओं के उस विशाल साम्राज्य में जहां उस भावगम्य परम पुरुष का वास है।

अपने प्रतिदिन के जीवन में स्वयं को बन्धनों में उलझाते रहना तथा यह आशा करना कि शांति की अनुभूति हो सके – यह तो कुछ ऐसी ही विरोधाभासी बात है ज्यों कोई यह चाहे कि उसे सूर्य की उष्मा एवं चन्द्रमा की शीतलता दोनों एक ही समय में और एक ही साथ समान रूप से मिल सकें!

जीवन में कर्त्तव्य होते हैं मध्याह्न के सूर्य सदृश्य, और परम सत्ता से एकाकार होने या आत्मलीन होने के क्षण होते हैं पूर्णिमा के चंद्र की आभा से सुखद शीतल। दोनों का परस्पर सामंजस्य ही कहां?

इसी सामंजस्य के अभाव के कारण ही तो होता है जीवन में शांति का अभाव क्योंकि यह तो व्यवहारिक रूप में संभव भी नहीं कि व्यक्ति अपने जीवन में कर्त्तव्यों से विमुख हो जाए। वस्तुतः कर्त्तव्यों से मुक्ति इस संसार में किसी के लिए भी सम्भव नहीं है यहां तक कि योगी के लिए भी नहीं। यह बात और है कि योगी के कर्त्तव्य और उसके कर्त्तव्य पालन का ढंग इस जगत के कर्त्तव्य पालन की रूढ़िवादी परिभाषा से भिन्न होता है।

ऐसा किस कारण से सम्भव होता है कि कर्त्तव्य तो योगी के ऊपर भी आरोपित होते हैं किन्तु वह उनमें उद्विग्न न होकर शान्त ही बना रहता है? यदि एक बार इस बात की विवेचना कर ली जाए तो हमें यह समझने में सरलता रहेगी कि क्या होता है शान्ति का रहस्य।

दीक्षाभि र्भवयेद् शान्तिम्

दीक्षाओं के माध्यम से ही परम शांति उपलब्ध होती है।

जीवन में कार्य शक्ति का अभाव, समय पर कार्य पूरे नहीं होने, बार-बार मन विचलित हो जाना, हर समय आशंका ग्रस्त रहना, छोटी सी असफलता से घबरा जाना, अपने आपको हताश समझना – ये सब अशान्त मन के ही प्रतीक हैं। जब तक मन अशांत रहता है, तो उसका प्रभाव उसकी देह पर भी पड़ता है, साथ ही व्यक्ति बार-बार असफल भी होता रहता है क्योंकि अशांत मन उसकी शक्ति विच्छिन्न कर देता है। जिस प्रकार पांचों अंगुलियों को बन्द कर देने से मुष्ठि बन जाती है, उसी प्रकार मन की अशान्ति को दूर कर उसमें शान्ति का भाव भरना ही सर्वशान्ति है। सर्व शान्ति का तात्पर्य है कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी बिना घबराये, अपने आपको उस कष्ट से बाहर निकाल लेना, अपनी शक्ति को विभक्त होने से रोककर एक ऐसा प्रवाह देना जो देह शक्ति, कार्य शक्ति, ज्ञान शक्ति को सहस्र गुणा कर सके।

जगत के पालनकर्ता भगवान विष्णु है और उनके ध्यान मंत्र में पहला शब्द है – **'शान्ताकारं भुजंग शयनं पद्म नाभं सुरेशं ...'** यहां भगवान विष्णु के वर्णन में प्रारम्भ में ही कहा गया है, कि जो शान्त स्वरूप है। यदि भीतर अशान्ति है तो व्यक्ति के जीवन का स्वरूप भी शान्त नहीं बन सकता। शान्ति का तात्पर्य कायरता नहीं है, शान्ति का तात्पर्य है कठिन से कठिन स्थिति में भी विचलित न हों और स्वरूप में वह शान्त भाव हो कि कोई कष्ट देने का विचार ही न कर सके, ऐसा शान्त स्वरूप जिसे देखते ही सामने वाला सम्मोहित हो जाये। क्रोध स्वरूप से सम्मोहन उत्पन्न नहीं किया जा सकता, क्रोध रूप से कोई भी क्रिया सफल नहीं हो सकती, क्रोध में तो शक्ति हजार दिशा में विच्छिन्न हो जाती है।

'सर्व शान्ति दीक्षा' का तात्पर्य है वह शान्ति पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाये, जो भगवान विष्णु में है, भगवान शिव में है। सर्व शान्ति दीक्षा शरीर के अणु अणु में फैली हुई चेतना को एक प्रवाह में लाने की क्रिया है जिस प्रकार लोहे के ऊपर चुम्बक को घर्षण करने से लोहे के अणु तत्व शक्तियुक्त बनकर चुम्बकीय प्रभाव से युक्त हो जाते हैं, वही स्थिति जीवन की है, कि गुरु का स्पर्श हो, विच्छिन्न होती हुई चेतना संयुक्त होकर प्रवाहयुक्त पुंज बन जाये और वह पुंज प्रगट हो। ***गुरु तो शिष्य को अपने जैसा ही शान्त और शिवं बनाना चाहते हैं, इसीलिये स्वयं शिष्य के जीवन का जहर ग्रहण करते हुए भी वे उसे सर्वशान्ति युक्त अमृत प्रदान करते हैं।***

योग: कर्मसु कौशलम्

कार्य में कुशलता ही वास्तविक योग है, यही सर्वप्रकारेण शान्ति प्राप्ति का उपाय भी है और यही भाव है सर्व शान्ति दीक्षा का भी।

यजुर्वेद की जिस प्रार्थना. . . .*जो शान्ति द्युलोक में है, जो शान्ति जल, वनस्पति, अन्तरिक्ष, ब्रह्म लोक, देवताओं के चित्त में है वही शान्ति मुझे भी प्राप्त हो* . . . से इस आलेख का प्रारम्भ किया वह स्वयं में मात्र एक प्रार्थना भर न होकर एक सूत्र भी है शान्ति को प्राप्त करने का।

– क्या यह सम्भव है कि जिस ऋषि ने ऐसे स्तवन को उच्चरित किया उसने पहले जल, थल, नभ, अन्तरिक्ष आदि में निहित किसी शान्ति का अनुभव न किया होगा?क्या उसने किसी तादात्म्य को सम्पन्न नहीं किया होगा?

शान्ति स्वयं तो मुखर होकर व्यक्त हो नहीं सकती शान्ति तो केवल अनुभूत की जा सकती है और अध्यात्म में जिस देवी-देवता या जिस भावभूमि का अनुभूत किया जाना अभीष्ट हो उससे तादात्म्य करना होता है, इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय सम्भव ही नहीं।

यह सत्य है कि जीवन में कर्त्तव्य रूपी सूर्य की प्रचण्ड ऊष्मा विद्यमान है, दूसरी ओर अध्यात्म की पूर्ण चंद्र सदृश्य सुखद शीतलता भी हमें आकृष्ट कर रही है – दोनों ही हमारे लिए समान रूप से वांछनीय हैं तथा इस बात का भी हमें ज्ञान है कि जिस प्रकार से सूर्य और चंद्र दोनों की एक साथ युति नहीं हो सकती, उसी प्रकार से इन दोनों भावभूमियों का सामंजस्य होना भी यदि असम्भव न कहें तो भी कठिन तो अवश्य है।

ऐसी स्थिति में सहज प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या फिर शान्ति की भावभूमि केवल किसी गृह त्याग चुके विरक्त योगी तक ही सीमित रह जाने वाली भावभूमि है?

ऐसा प्रतीत तो नहीं होता क्योंकि हमारे जिन ऋषियों ने यजुर्वेद (एवं अन्य वेदों की) की रचना की, वे स्वयं में पूर्णता के साथ पारिवारिक जीवन से संयुक्त व्यक्तित्व हुए हैं।

यह सत्य है कि सूर्य व चंद्र की एक ही घड़ी में संयुक्ति नहीं हो सकती किन्तु एक ऐसी भी वेला होती है जब काल के पल सूर्य व चंद्र दोनों के साक्षी बनते हुए भी दोनों के आधिपत्य से मुक्त होते हैं और वह होती है गोधूलि की वेला – जो स्वयं में पवित्रतम वेला वर्णित की गयी है।

जहां संयुक्ति भी हो रही हो और संयुक्ति के उपरान्त भी आसक्ति न हो रही हो – जीवन में जब ऐसा पल आता है वास्तव में तभी किसी व्यक्ति के मन में शान्ति की कोई भावभूमि स्पष्ट हो सकती है।

जीवन में गुरु का साहचर्य भी एक गोधूलि की वेला सा पावन अवसर होता है और शिष्य प्रयास करे, अनुभूत करे, विश्वास करे तो नित्य होता है, हर पल होता है क्योंकि इस सचराचर ब्रह्माण्ड में केवल एक वह गुरु सत्ता ही होती है जो काल के बंधन से सर्वथा परे होती है और वही अपने शिष्य को आत्मवत् बनाते हुए उसे भी मुक्त कर देने की सामर्थ्य रखती है।

शान्ति की भावभूमि ऐसी भावभूमि है जिसे गुरु चरणों में बैठ कर ही अनुभूत किया जा सकता है किन्तु इसका तात्पर्य किसी अनुभूति या sensation अथवा रीढ़ की हड्डी में किसी गुदगुदी से कदापि नहीं है।

जीवन सर्वप्रकारेण न्यूनताओं, बाधाओं, उपद्रवों से मुक्त होता हुआ एक अविरल प्रवाह की भांति गतिशील हो सके, सौन्दर्यवान हो सके, आत्मतृप्त व आप्तकाम हो सके, इस हेतु पूज्यपाद गुरुदेव ने जिस दीक्षा के विधान को अपने शिष्यों के मध्य सुलभ करने का विचार निर्मित किया है वह है **सर्व शान्ति दीक्षा।**

शिष्य का जो भी चिंतन हो, गुरु का लक्ष्य तो अपने शिष्य के प्रति मात्र इतना ही होता है कि शीघ्रातिशीघ्र उनका शिष्य आप्तकाम (सांसारिक इच्छाओं से पूर्ण) होता हुआ उस आनन्द रूपी समुद्र में उनके साथ प्रवेश पा सके जिस आनन्द रूपी समुद्र में गुरु का यथार्थ वास होता है।

इन अर्थों में जहां यह **सर्व शान्ति दीक्षा** एक ओर से आध्यात्मिकता के प्रभावों से युक्त दीक्षा है तो वहीं दूसरी ओर यह स्वयं में पूर्णरूपेण भौतिक क्रम की दीक्षा भी है।

वस्तुतः जीवन की गति हमारी स्वेच्छा से संचालित न होकर संचालित होती है अनेकानेक अन्य कारणों व दबावों से। कहीं कोई विवशता का एक कारण बन जाता है, तो कहीं कोई दूसरा और इसमें जो घुटन होती है वही होती है अशान्ति का मूल कारण। यदि दो टूक शब्दों में कहें तो यदि एक बार व्यक्ति अपने जीवन में अशान्ति को दूर करने का स्थायी उपाय जान ले तो जो शेष रह जाएगी वह शान्ति ही तो होगी और ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब व्यक्ति जीवन के प्रति साक्षी भाव को अपना सके।

अपने विशद अर्थों में सर्व शान्ति दीक्षा साधक को यही साक्षी-भाव प्रदान करने का व्यवहारिक रूप है।

मैं समय हूं

साधक, पाठक तथा सर्वजन सामान्य के लिए समय के वे रूप यहां प्रस्तुत हैं, जो किसी भी व्यक्ति के जीवन में उन्नति या अवनति के कारण होते हैं तथा जिन्हें जान कर आप स्वयं अपने लिए उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

नीचे दी गई सारणी में समय को तीन रूपों में प्रस्तुत किया गया है – श्रेष्ठ, मध्यम और निम्न। जीवन के लिए आवश्यक किसी भी कार्य के लिये, चाहे वह व्यापार से सम्बन्धित हो, नौकरी से सम्बन्धित हो, घर में शुभ उत्सव से सम्बन्धित हो अथवा अन्य किसी भी कार्य से सम्बन्धित हो, आप इस श्रेष्ठतम समय का उपयोग कर सकते हैं और सफलता का प्रतिशत 99.9% आपके भाग्य में अंकित हो जायेगा।

यदि किसी कारणवश आप श्रेष्ठ समय का उपयोग नहीं कर सकें, तो मध्यम समय का प्रयोग कर सकते हैं। इस काल में भी कार्य पूर्ण होता है और प्रतिशत होता है 75%, अर्थात् कार्य पूर्ण होने में विलम्ब होता है, किन्तु सफलता मिलती है।

निम्न समय का उपयोग तो सदा से निषिद्ध है, क्योंकि यदि करते हुए कार्य का प्रारम्भ भूल वश भी निम्न समय में हो जाय, तो वह बिगड़ जाता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए, कि निम्न समय में किसी भी प्रकार के कार्य का प्रारम्भ न करे।

वार/दिनांक	श्रेष्ठ समय	मध्यम समय	निम्न समय
रविवार (2, 9,16,23,30 अप्रैल 7, 14 मई)	ब्रह्ममुहूर्त 4.24 से 10.00 तक सायं 6.48 से 7.36 तक सायं 8.24 से 10.00 तक रात्रि 3.36 से 4.24 तक	प्रातः 10.00 से 2.00 तक रात्रि 10.48 से 1.12 तक	दोपहर 2.00 से 6.48 तक सायं 7.36 से 8.24 तक रात्रि 10.00 से 10.48 तक रात्रि 1.12 से 3.36 तक
सोमवार (3, 10, 17, 24 अप्रैल 1, 8, 15 मई)	ब्रह्ममुहूर्त 4.24 से 7.30 तक प्रातः 10.48 से 1.12 तक दोपहर 3.36 से 5.12 तक सायं 7.36 से 10.00 तक रात्रि 1.12 से 2.48 तक	प्रातः 9.00 से 10.48 तक दोपहर 1.12 से 3.36 तक सायं 6.00 से 7.36 तक रात्रि 10.00 से 1.12 तक	प्रातः 7.30 से 9.00 तक सायं 5.12 से 6.00 तक रात्रि 2.48 से 4.24 तक
मंगलवार (4, 11, 18, 25 अप्रैल 2, 9, 16 मई)	प्रातः 6.00 से 8.24 तक प्रातः 10.00 से 12.24 तक सायं 7.36 से 10.00 तक रात्रि 12.24 से 2.00 तक रात्रि 3.36 से 4.24 तक	ब्रह्ममुहूर्त 4.24 से 5.12 तक प्रातः 9.12 से 10.00 तक सायं 6.00 से 7.36 तक रात्रि 10.00 से 12.24 तक रात्रि 2.48 से 3.36 तक	प्रातः 5.12 से 6.00 तक प्रातः 8.24 से 9.12 तक दोपहर 12.24 से 4.30 तक सायं 5.12 से 6. 00 तक रात्रि 2.00 से 2.48 तक
बुधवार (5, 12, 19, 26 अप्रैल 3, 10, 17 मई)	ब्रह्ममुहूर्त 4.24 से 6.00 तक प्रातः 7.36 से 9.12 तक प्रातः 11.36 से 12.00 तक दोपहर 3.36 से 6.00 तक सायं 6.48 से 10.48 तक रात्रि 2.00 से 4.24 तक	प्रातः 6.00 से 7.36 तक प्रातः 9.12 से 11.36 तक दोपहर 2.00 से 3.36 तक रात्रि 10.48 से 12.24 तक	दोपहर 12.00 से 2.00 तक सायं 6.00 से 6.48 तक रात्रि 12.24 से 2.00 तक
गुरुवार (6, 13, 20, 27 अप्रैल 4, 11, 18 मई)	प्रातः 4.24 से 8.24 तक प्रातः 10.48 से 1.12 तक सायं 4.24 से 6.00 तक सायं 7.36 से 10.00 तक रात्रि 1.12 से 2.48 तक	प्रातः 9.12 से 10.48 तक दोपहर 10.12 से 1.30 तक सायं 6.00 से 7.36 तक रात्रि 10.00 से 1.12 तक	प्रातः 8.24 से 9.12 तक दोपहर 1.30 से 4.24 तक सायं 6.00 से 7.36 तक रात्रि 2.48 से 4.24 तक
शुक्रवार (7, 14, 21, 28 अप्रैल 5, 12 मई)	ब्रह्ममुहूर्त 4.24 से 6.00 तक प्रातः 6.48 से 1.12 तक सायं 4.24 से 5.12 तक सायं 8.24 से 10.48 तक रात्रि 1.12 से 3.36 तक	दोपहर 1.12 से 4.24 तक सायं 6.00 से 7.36 तक रात्रि 10.48 से 1.12 तक	प्रातः 6.00 से 6.48 तक सायं 5.12 से 6.00 तक सायं 7.36 से 8.24 तक रात्रि 3.36 से 4.24 तक
शनिवार (1, 8, 15, 22, 29 अप्रैल 6, 13 मई)	ब्रह्ममुहूर्त 4.24 से 6.00 तक प्रातः 10.30 से 12.24 तक दोपहर 3.36 से 5.12 तक सायं 8.24 से 10.48 तक रात्रि 2.00 से 3.36 तक	प्रातः 7.36 से 8.24 तक दोपहर 1.12 से 2.00 तक सायं 6.00 से 8.24 तक रात्रि 10.48 से 12.24 तक	प्रातः 6.00 से 7.36 तक प्रातः 8.24 से 10.30 तक दोपहर 12.24 से 1.12 तक दोपहर 2.00 से 3.36 तक सायं 5.12 से 6.00 तक रात्रि 12.24 से 2.00 तक रात्रि 3.36 से 4.24 तक

यह हमने नहीं वराहमिहिर ने कहा है

किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व प्रत्येक व्यक्ति के मन में संशय-असंशय की भावना रहती है, कि यह कार्य सफल होगा या नहीं, सफलता प्राप्त होगी या नहीं, बाधाएं तो उपस्थित नहीं हो जायेंगी, पता नहीं दिन का प्रारम्भ किस प्रकार से होगा, दिन की समाप्ति पर वह स्वयं को तनावरहित कर पायेगा या नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति कुछ ऐसे उपाय अपने जीवन में अपनाना चाहता है, जिनसे उसका प्रत्येक दिन उसके अनुकूल एवं आनन्द युक्त बन जाय। कुछ ऐसे ही उपाय आपके समक्ष प्रस्तुत हैं, जो वराहमिहिर के विविध प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रंथों से संकलित हैं, जिन्हें यहां प्रत्येक दिवस के अनुसार प्रस्तुत किया गया है तथा जिन्हें सम्पन्न करने पर आपका पूरा दिन पूर्ण सफलतादायक बन सकेगा।

15 अप्रैल प्रत्येक कार्य से पूर्व पांच बार 'ॐ ह्रीं ह्रीं ॐ' (Om Hreem Hreem Om) का उच्चारण करें।

16 अप्रैल प्रात: बिस्तर से उठते समय जिस ओर का श्वास चल रहा हो, उसी पैर को सबसे पहले भूमि पर रखें।

17 अप्रैल प्रात:काल गुरु चित्र के समक्ष खड़े होकर निम्न श्लोक का पांच बार उच्चारण करें -

कारुण्य सिन्धु निखिलेश्वर! दीनबन्धु!
प्रेमावतार! परिपोषय शिष्यवर्गम।
मोहं निवार्य परि लक्षय चित्त स्वरूपं,
वन्दे गुरो! निखिल! ते चरणारविन्दम् ॥

18 अप्रैल प्रात:काल सूर्योदय से पहले ही पूजा स्थान में कुंकुम से स्वस्तिक बनाकर उस पर जल से भरा कलश स्थापित करें।

19 अप्रैल प्रात: काल सिर धोकर चावल या अक्षत के ११ दाने 'गं' बीज मंत्र का उच्चारण करते हुए भगवान गणपति के चित्र अथवा विग्रह पर अर्पित करें।

20 अप्रैल प्रात: काल हनुमान जी के चित्र अथवा हनुमान मन्दिर में जाकर गुड़ व चने का भोग लगाएं, व संकट निवारण की प्रार्थना करें।

21 अप्रैल गुरु जन्म दिवस के रूप में प्रात: '**निखिलेश्वरानन्द स्तवन**' का पूर्ण पाठ करें, दिवस पर्यन्त गुरु चिन्तन करें। गुरु साधना सम्पन्न करें, गुरु मंत्र का अधिकाधिक जप करें तथा सामर्थ्यानुसार गुरु सेवा करने का संकल्प लें।

22 अप्रैल प्रात: गुरु पूजन कर निम्न श्लोक का ११ बार पाठ करें-

ज्ञान विज्ञान सहितं लभ्यते गुरु भक्ति: त:।
गुरो: परतरं नास्ति ध्येय: स गुरु मार्गिभि: ॥

23 अप्रैल तेल के दीपक में एक लौंग डालकर इष्ट आरती सम्पन्न करें, कार्यों में सफलता मिलेगी।

24 अप्रैल घर से बाहर जाते समय दूध से बने किसी पदार्थ का सेवन कर के जायें, कार्य में अनुकूलता मिलेगी।

25 अप्रैल चावल के सात दाने लेकर उन्हें अपने सिर के ऊपर घुमा कर दक्षिण दिशा की ओर फेंक दें।

26 अप्रैल 'संकटनाशन गणपति स्तोत्र' (मार्च-२०००अंक) का प्रात: पाठ करें, कार्यों में सफलता की सम्भावना बढ़ेगी।

27 अप्रैल प्रात: काल किसी भी पेड़ के एक हरे पत्ते को लेकर, उस पर कुंकुम से 'ह्रूं' लिखें तथा उसे पूजा स्थान में रखकर उस पर एक सुपारी स्थापित कर उसे देव स्वरूप मानते हुए उसका संक्षिप्त पूजन करें।

28 अप्रैल प्रात:काल ऑडियो कैसेट '**दुर्लभोपनिषद**' का श्रवण करें, उत्साह एवं आत्म विश्वास में वृद्धि होगी।

29 अप्रैल भोजन करने से पूर्व गाय को कुछ खाने को अवश्य दें।

30 अप्रैल प्रात: तुलसी के वृक्ष में एक कलश जल अर्पित कर अगरबत्ती दिखाएं, पूरा दिन सफलतायुक्त रहेगा।

1 मई घर से बाहर जाते समय थोड़ा नमक पैर के नीचे मसल कर जायें, कार्य में आने वाली बाधाएं समाप्त होंगी।

2 मई सफेद वस्त्र धारण करना आज के दिन शुभ रहेगा।

3 मई पीपल के पत्ते पर मिष्ठान्न रख कर हनुमान मन्दिर में चढ़ाने से आज आपको शुभ समाचार मिल सकता है।

4 मई एक सफेद रुमाल में थोड़ी मिट्टी, काला तिल व नमक बांध कर घर से बाहर फेंक दें, शान्ति अनुभव होगी।

5 मई भगवती दुर्गा के चित्र के समक्ष तीन लाल पुष्प चढ़ाकर आत्म रक्षा की प्रार्थना करें।

6 मई आज अक्षय तृतीया है, साधना के इस सिद्धतम मुहूर्त में आज के दिन से कोई साधना प्रारम्भ करें।

7 मई '**ॐ नम: शिवाय**' मंत्र से शिवलिंग का १०८ बार अभिषेक करें, फिर उस जल को पी लें।

8 मई आज गुरु चित्र अथवा लॉकिट को दिवस भर अपने पास रखें, संकट से रक्षा होगी।

9 मई प्रात: गुरु पूजन के समय कोई मौसमी फल चढ़ाएं।

10 मई आज प्रात: संन्यास गुरु आरती अवश्य गाएं।

11 मई प्रत्येक कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व गुरु अथवा इष्ट का स्मरण कर कार्य में अनुकूलता की प्रार्थना करें।

12 मई आज प्रात: चार माला गुरु मंत्र अतिरिक्त जप करें।

13 मई आज प्रात: गुरु पूजन के समय घी का दीपक जलाएं।

14 मई '**राम रक्षा स्तोत्र**' (नवम्बर ९९अंक) का प्रात: पाठ करें, तो मानसिक तनाव / क्लेश न होगा, अनुकूलता प्राप्त होगी।

14.6.2000
या किसी बुधवार से

तन्नो दन्ती प्रचोदयात्
(भगवान् गणपति हमें सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करें)

क्या आपने सम्पन्न की है भगवान श्री गणपति के द्वादश रूपों में प्रथम यह –

सुमुख गणपति साधना

–समस्त देवी-देवताओं में प्रथम पूज्य मंगलमूर्ति भगवान श्री गणपति का नाम ही है, जिनका स्मरण-मात्र ही मन में स्फुरण उत्पन्न कर देता है। उन भगवान श्री गणपति के भी अनेकविध रूपों में सर्वप्रथम रूप है – सुमुख गणपति रूप! उनका लावण्यमय रूप, उनका प्रसन्नवदन रूप . . .

वे मोदक प्रिय हैं, वे दूर्वा का एक टुकड़ा चढ़ा देने से ही प्रसन्न हो जाने वाले हैं, वे गजवदन हैं अर्थात् उनका मुख हाथी का है, उनका वाहन मूषक है, वे बुद्धि के अधिष्ठाता देव हैं, वे ऋद्धि और सिद्धि के पति हैं, शुभ और लाभ उनके पुत्रद्वय हैं, वे समस्त मंगल कार्यों में स्मरण करने पर सफलता देने वाले भी हैं और समस्त विघ्नों का विनाश करने वाले भी हैं . . .

–सम्भवतः किसी भी धर्मप्राण व्यक्ति को भगवान श्री गणेश का अधिक परिचय देने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे जनसामान्य के मन-प्राण में बसे हुए देव हैं और जो मन-प्राण में बसे होते हैं, व्यक्ति उनकी अभ्यर्थना किसी विशेष विधि-विधान के साथ मन के भावों से भी करना अति आवश्यक है।

मन के भावों से केवल भगवान श्री गणपति की ही नहीं किसी भी देवी या देवता की स्तुति की जा सकती है और इसमें कोई दोष भी नहीं है जब तक ऐसा करना निःस्वार्थ हो। मानसिक पूजन समस्त पूजन विधानों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है किन्तु केवल उसी स्थिति में जहां भक्त और भगवान के मध्य का भेद मिट चला हो।

व्यवहार में होता यह है कि व्यक्ति भक्ति के माध्यम से वस्तुतः अपने जीवन के लिए कुछ याचना सी कर रहा होता है और यदि कटु सत्य कहा जाए तो इस तरह से वह किसी अन्य को नहीं वरन स्वयं को ही छल रहा होता है।

जहां जीवन में कोई कामना हो और देवी-देवताओं के बल को प्राप्त करने की कामना हो वहां भक्ति का आचरण छोड़कर साधना का अवलम्बन लेना भी हमारी ही भारतीय परम्परा रही है। इस बात को विशेष रूप से कहना इस कारण से आवश्यक हो गया था क्योंकि कौन धार्मिक व्यक्ति नहीं है जो परम्परा में गणपति पूजन की महत्ता से अनभिज्ञ हो और

ऐसे धर्मप्राण व्यक्तियों का कौन सा ऐसा व्यापार स्थल होगा जहां *'श्री गणेशाय नमः'* अंकित नहीं होता है अथवा 'शुभ-लाभ' नहीं लिखा रहता है? ये सभी क्रियाएं भगवान श्री गणपति के दैविक बल की कामना नहीं तो और क्या है? निःसंदेह इनका भी अपना अर्थ है किन्तु विचार करके देखें तो क्या ये किसी भी देव को एक सीमा में बांध देने की क्रियाएं नहीं हैं?

गणपति केवल विघ्न-विनाशक, मंगलकारक प्रथम पूज्य देव ही नहीं वरन् इससे भी अधिक प्रभावशाली, समर्थ और कल्याणकारी देव हैं। उनके प्रभाव को केवल इतना ही वर्णित करना एक प्रकार से उनके मूल्यांकन में त्रुटि करना है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी गूढ़ सत्य को सुगम बनाने के लिए कथा का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है किंतु कालांतर में होता यह है कि उस कथा के आवरण के नीचे सत्य ही दब जाता है! पुराणों में वर्णित अधिकांश कथाओं के साथ भी यही हुआ है और इसी कारणवश भगवान श्री गणपति का स्वरूप भी एक सीमितता में आबद्ध हो कर रह गया है।

प्राचीन काल में जब साधनाओं के प्रति समाज का स्वस्थ दृष्टिकोण था तब भगवान श्री गणपति केवल प्रथम पूज्य देव ही नहीं वरन् साधनाओं की आधार-भूमि थे। जिस प्रकार से शाक्त तंत्र, शैव तंत्र से हम आज भी किसी रूप में परिचित हैं उसी प्रकार से गणपति से सम्बन्धित पृथक गाणपत्य तंत्र भी अस्तित्व में था।

तंत्र स्वयं में जीवन का सौन्दर्य होता है क्योंकि केवल तंत्र ही वह विधा (style) है जिसके पास जीवन के प्रति वास्तविक दृष्टि है, यह बात और है कि तंत्र का अर्थ आज विकृत किया जा चुका है। तंत्र स्वयं में किसी उन्मुक्तता का पोषक नहीं है किन्तु तंत्रका यह कहना अवश्य है कि व्यर्थ की वर्जनाओं से जो मन कुंठित हो जाता है वह भी स्वयं में कोई श्रेष्ठता नहीं हो सकती।

तंत्र शरीर छोड़ कर चलने की बात नहीं कहता और न शरीर छोड़कर चला जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ, सबल और सुंदर होना चाहता हैऔर इस प्रकार से उसके मन को जो तुष्टि मिलती है वही साधनाओं में गति का आधार बनती है। सौन्दर्य से ही आत्मविश्वास आता है, कुरूपता से नहीं। संसार में कोई भी नहीं होगा जो कुरूपता का उपासक हो।

प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से अपने सौन्दर्य का विकास करता भी रहता है किन्तु सौन्दर्य से भी जो विशेष बात होती है और जिसका ज्ञान प्रायः व्यक्ति को नहीं होता वह यह होती है कि सौन्दर्य के साथ-साथ व्यक्ति में एक लालित्य अर्थात्

क्यों बुझा-बुझा रहता है सारा चेहरा? क्यों नहीं खिला-खिला रहता है यह मन? क्यों घेरे रहती है हर समय एक उदासी? कब समय निकालेंगे आप अपने आप से ही जुड़े इन प्रश्नों पर विचार करने के लिए?

सुकोमलता, रमणीयता एवं सरसता भी हो।

सम्भवतः किसी अन्य देवी या देवता के लिए **ललित** शब्द का प्रयोग नहीं हुआ होगा किन्तु भगवान गणपति के लिए जो विशेषण प्रमुखता से प्रयुक्त हुआ है वह यही शब्द है।

ललित शब्द यद्यपि अपने भाव में सम्मोहन के बहुत निकट है किंतु वास्तव में इसका जो भाव है वह सम्मोहन से कहीं अधिक विस्तृत है।

यदि संक्षेप में कहा जाए तो सम्मोहन यदि एक बाह्य भाव है तो वहीं लालित्य व्यक्ति का आत्म भाव, उसका स्वपक्ष और जहां आत्म-पक्ष के श्रृंगार अर्थात् लालित्य की बात हो वहां सत्य तो यही है कि ऐसी विशिष्टता व्यक्ति केवल विशिष्ट साधनाओं के माध्यम से ही अर्जित कर सकता है। विशिष्ट साधनाओं की ही दूसरी संज्ञा है-तांत्रिक साधनाएं!

विशद रूप में तो तंत्रोक्त ढंग से भगवान श्री गणपति की अनेकविध रूपों में साधना सम्पन्न करने का विधान है यथा-***द्विमुखगणपति, नृत्तगणपति, उर्ध्वगणपति, सृष्टिगणपति, द्विजगणपति*** इत्यादि किन्तु गृहस्थ साधकों हेतु द्वादश रूपों—**सुमुख, एकदन्त, कपिल, गजकर्ण, लम्बोदर, विकट, विघ्ननाशक, विनायक, धूम्रकेतु, गणाध्यक्ष, भालचंद्र एवं गजानन** की तांत्रिक साधना का ही विशेष महत्व कहा गया है तथा इनमें भी प्रथम है-सुमुख गणपति की साधना।

भगवान श्रीगणपति की सुमुखता का तात्पर्य केवल उनका दैवीय व अलौकिक रूप-रंग नहीं अपितु इससे कहीं अधिक विस्तारित है। केवल रूप-रंग, सौन्दर्य की परिपूर्णता शायद हो भी नहीं सकते। दैहिक सौन्दर्य से भी जो विशिष्ट स्थिति होती है वह यह होती है व्यक्ति के सौन्दर्य में किसी आभा (grace) का भी समावेश हो।

जिस तरह से मुरझाए पुष्प में कोई सौन्दर्य नहीं होता है उसी तरह से आभाहीन सौन्दर्य का भी कोई अर्थ नहीं होता है और यह आभा व्यक्ति किसी प्रसाधन से भी नहीं प्राप्त कर सकता और न ही किसी कॉस्मेटिक सर्जरी से।

सौन्दर्य तो उसको कहते हैं जहां सारे का सारा व्यक्तित्व किसी शीतल आभा से विप्-विप् कर रहा हो भले

प्रथम पूज्य भगवान श्रीगणपति से सम्बंधित उनकी साधना का सर्वप्रथम और सर्वोत्कृष्ट रूप, जो आज तक सीमित रहा केवल गुरु-परम्परा में, किसी भी साधक के जीवन को आमूल-चूल परिवर्तित कर देने में समर्थ।

ही फिर आंखें और नाक सौन्दर्य के मापदण्डों की कसौटी पर खरी उतर रही हो या न उतर रही हो और यह आभा व्यक्ति के जीवन में जिस उपाय से समाहित हो सकती है वह केवल यही हो सकता है कि व्यक्ति के अन्तर्मन में बुद्धिमत्ता, उदात्त भावनाओं व गहन आस्था का संगम सा हो रहा हो।

इस संगम से जिस त्रिवेणी का निर्माण होता है वही मूक शांति बन सारे व्यक्तित्व में फैल जाती है और इसी को लालित्य कहते हैं। **इसी लालित्य के कारण ही भगवान श्रीगणपति को मंजुल भी कहा गया है** और उनकी यह मंजुलता या लालित्य जिस साधना के माध्यम से साधक में समाहित हो सकता है उसे ही सुमुख गणपति साधना कहा गया है।

सुमुख गणपति साधना का तात्पर्य है कि व्यक्ति में सौन्दर्य तो आए ही साथ में वह स्थिति भी आए जिससे वह सौन्दर्य स्थायी हो सके, अर्थवान हो सके, दैहिक सौन्दर्य के साथ-साथ मन का सौन्दर्य भी आ सके। जिस व्यक्ति में मन का सौन्दर्य होता है उसके सारे के सारे व्यक्तित्व में ऐसी सम्मोहकता आ जाती है कि उसे अपने विषय में बोल कर कुछ बताने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है, उसके पास जाते ही सारा मन शांत और स्निग्ध हो जाता है

. . . ठीक वैसे ही जैसे किसी डाली पर खिला कोई पुष्प, जो बिना कुछ कहे अपना परिचय एक सुगन्ध के माध्यम से स्वयं दे देता है!

सुमुख गणपति साधना करने का विधान स्वयं में अत्यंत सरल और सहज है यद्यपि यह एक तांत्रिक साधना ही है। **जिन्हें तांत्रिक साधना के नाम पर किसी लम्बे-चौड़े विधान की अपेक्षा हो उन्हें शायद कुछ निराशा हो सकती है।**

भगवान श्रीगणपति से सम्बन्धित किसी भी साधना को करने का दिवस वैसे तो **बुधवार** ही निर्धारित है किन्तु इस साधना की यह विशेषता है कि इसे किसी भी दिवस सम्पन्न किया जा सकता है। बस जिस दिन मन में कुछ नूतन करने का भाव उमड़े, ऐसी श्रेष्ठ साधनाओं के प्रति विश्वास भाव प्रबल हो तथा सबसे बड़ी बात यह कि इस बात में दृढ़ आस्था हो कि अन्ततोगत्वा जो स्वयं के भीतर से आता है चाहे वह ज्ञान हो शांति हो या सौन्दर्य वही वास्तविक होता है—*तो बस वही दिन इस साधना को करने का सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त है।*

सुमुख गणपति साधना

इस एक दिवसीय साधना को या तो प्रातः चार से पांच बजे के मध्य में करें अथवा रात्रि में दस से ग्यारह के मध्य। साधना में वस्त्रों का रंग पीला हो तथा दिशा उत्तर रहे। साधना हेतु साधक के पास ताम्रपत्र पर अंकित **'गणपति प्रत्यक्ष यंत्र'** तथा **'मूंगे की माला'** होनी आवश्यक **है**। इन दोनों सामग्रियों को किसी ताम्रपात्र में स्थापित कर इन्हें जल से धोएं तथा पोंछ कर पुष्प, कुंकुम, अक्षत, गंध से संक्षिप्त पूजन करें एवं निम्न प्रकार से ध्यान उच्चरित करें—

मुक्ता-गौर भव-गज-मुखं चन्द्र-चूडं त्रिनेत्रम्
हस्तैः स्वीयैर्दधतमर विन्दांकुशौ रत्न-कुम्भम्।
अंकस्थायाः सरसिज-रुचेस्तव्-ध्वजालम्बि-पाणे,
र्देवयाः योनौ विनिहित-करं रत्न-मौलिं भजामः॥

वस्तुतः यह ध्यान स्वयं में अत्यंत प्रभावशाली, शाब्दिक अर्थ से पृथक, विशिष्ट लक्षणा एवं विन्यास से युक्त है। **गाणपत्य तंत्र के अन्तर्गत यह ध्यान केवल स्तुति में उच्चरित शब्द भर ही नहीं अपितु मंत्र का स्थान रखता है** अतः साधक इसे गम्भीरता-पूर्वक उच्चरित करें।

उपरोक्त ढंग से ध्यान करने के पश्चात यंत्र पर बारह कुंकुम की बिंदियां भगवान श्रीगणपति के द्वादश रूपों के प्रतीक रूप में लगाएं तथा मूंगे की माला से निम्न मंत्र की ५ माला मंत्र जप को सम्पन्न करें, यह मंत्र जप एक बार में ही सम्पूर्ण करें—

मंत्र

॥ ॐ क्षं क्षेमम् रूप सौभाग्य दीप्तये दीप्तये फट्॥

Om Ksham Kshemam Roop Soubhaagya Deeptaye Deeptaye Phat

मंत्र जप के पश्चात कुछ देर तक साधना स्थल पर ही विश्राम करें तथा मूंगा माला को गले में डाल लें। इस माला को एक माह तक गले में पहने रहें तथा उसके बाद माला व यंत्र दोनों को किसी स्वच्छ सरोवर या नदी में विसर्जित कर दें।

भगवान श्रीगणपति बुद्धि के अधिष्ठाता देव हैं। इनकी साधना से जीवन में वह सुमति आती है जिससे मन के द्वंद्व समाप्त हो कर अपूर्व गहन शांति आती है। यही शान्ति अन्तर्मन के सौन्दर्य का आधार बनती है। अन्तर्मन का सौन्दर्य ही बाह्य सौन्दर्य का आधार है। यही इस साधना का रहस्य है।

साधना सामग्री – 240/-

काल विश्लेषण

साधक वही है, जो काल की गति को पहले से ही भांप ले

इतिहास तिथियों और तारीखों से ही निर्मित होता है। ग्रहों का संयोग और काल के उन क्षणों का ही प्रभाव होता है, जो ऐतिहासिक घटनाओं को जन्म देता है, युद्ध स्थितियां, प्रलय, राज्योन्नति एवं व्यक्तिगत जीवन में भी उतार एवं चढ़ाव निर्धारित करता है। निकट भविष्य किस प्रकार से सामाजिक व साधनात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, नक्षत्र गणना पर आधारित इसी पक्ष का ज्योतिषीय विवेचन प्रस्तुत है इस स्थायी स्तम्भ के माध्यम से – 'काल विश्लेषण'

मार्च के अंक के पृष्ठ ७५ '**षष्ठ ग्रही योग**' उपशीर्षक के अन्तर्गत इस बात के संकेत दे दिये गये थे कि इस वर्ष **2, 3** और **4 मई** को होने वाले एक ही राशि (मेष) में सभी छः बड़े ग्रहों का योग और वह भी मंगल से बारहवें, साथ ही मंगल की ही राशि मेष में *शनि, सूर्य, बृहस्पति, शुक्र जैसे प्रमुख ग्रहों का योग कितना अनिष्टकारी है। संकेतों के अनुसार ही घटनाएं भी घट ही रही हैं।*

पत्रिका का उद्देश्य '**वसुधैव कुटुम्बकं**' है, इसलिये – (१.) मोजाम्बीक में बाढ़ हो, (२.) इण्डोनेशिया में राजनैतिक उथल-पुथल हो, (३.) श्रीलंका में आये दिन बम विस्फोट हों, (४.) आंध्रप्रदेश, बिहार जैसे प्रान्तों और मध्य प्रदेश के बीहड़ों में उग्रवादियों की गतिविधियां इतनी बढ़ जावें कि मंत्रियों, सांसदों तक की हत्याएं होने लगी हों, (५.) व्यापार जगत में शेयर बाजार एक ही दिन में दो-तीन सौ तक अंकों से ऊपर नीचे होने लगे हों, कि विश्व की प्रमुख व्यापारिक घराने भी घाटे के चपेट में आने से बचने के लिये अपने-अपने संघ बनाने के लिये बाध्य हो जावें अथवा (६.) किसी भी देश का कैसा भी सत्ताधारी क्यों न हो, क्या आज यह कहा जा सकता है कि वह निश्चिन्त है? – ये सभी बातें सोचने का गम्भीर विषय हैं।

. . . और जब जर्मनी जैसे विकसित देश में भी जहां की आबादी दस करोड़ भी न हो और बेकारी आधा करोड़ हो, तब कल्पना की जा सकती है, कि यह दुनिया कहां जा रही है?

इसीलिये ***सम्पूर्ण मानवता में व्याप्त असुरक्षा, अशान्ति, मानसिक क्लेश, पारिवारिक मन-मुटाव और नई-नई व्याधियों-बीमारियों से जीवन को खतरा – यह सब इस बात का प्रतीक है कि केवल और केवल आध्यात्मिक मार्गदर्शन, मांत्रिक-तांत्रिक उपायों, संतों के बताये मार्ग पर चलने की जितनी आवश्यकता आज है, इतनी पहले कभी नहीं रही।***

इस दृष्टि से नक्षत्र मण्डल में ३६० में से मात्र १०-१५ डिग्री के अन्दर ही लगभग सभी ग्रहों का संचरण ठीक वैसी ही बात है जैसे आग में घी डाल दिया जाये। ग्रहों की गति पर तो मनुष्य का जोर नहीं है, परन्तु आर्य ऋषियों ने, और विशेष रूप से **भगवत् पूज्यपाद सद्गुरुदेव डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली जी** ने समाज को बहुत कुछ उपाय दे दिये हैं। पत्रिका के पृष्ठों में दिये हुए साधना प्रयोग, शिविरों में दीक्षाएं एवं अन्य मार्गदर्शन निःसन्देह वरदान सिद्ध हो रहे हैं। और तभी शिविरों में साधकों का सैलाब देखा जा रहा है।

13.4.2000 से **13.5.2000** के बीच **चतुर्ग्रही, पंचग्रही, षष्ठग्रही योगों** का निर्माण निःसन्देह रूप से मेष लग्न और मेष राशि, वृष लग्न और वृष राशि, कन्या लग्न और कन्या राशि, तुला लग्न और तुला राशि, वृश्चिक राशि तथा मीन लग्न और मीन राशि के प्रभाव में आने वाले व्यक्तियों के

<u>सूर्य साधना</u> : 16.4.2000 को रविवार के साथ त्रयोदशी तिथि व कामदेव जयंती भी है। सूर्य एवं शुक्र दोनों उच्च राशि में तथा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र और शुक्ल पक्ष के साथ ही प्रदोष व्रत के होने से यह तिथि सूर्य एवं अन्य साधनाओं के लिये भी विशेष अनुकूल है।

२१ अप्रैल २००० के दिन साधना प्रारम्भ के श्रेष्ठतम मुहूर्त

- प्रातः सूर्योदय के लगभग डेढ़ घण्टे के पूर्व
- मध्याह्न ११:३० से १२:३० के मध्य

सम्बन्ध में अधिक चिन्ताजनक परिस्थितियां जैसे जीवन को खतरा, घोर घाटा, पद या यश/सम्मान/गरिमा/सन्तान आदि को गम्भीर खतरा हो – अर्थात किसी भी तरह से हानि की आशंका तो सम्भव ही है, क्षेत्रीय और प्रादेशिक दृष्टि से आगजनी भूकम्प, बाढ़, तूफान, रेल, हवाई और सड़क दुर्घटनाएं अचानक बढ़ती हुई नजर आयेंगी।

कुल मिलाकर सम्पूर्ण मानवता कराहती हुई सी लग सकती है। ग्रहों के संकेत ऐसे भी हैं कि धर्म के नाम पर उग्रवाद बढ़ सकता है। धार्मिक उग्रवाद से सामान्य व्यक्ति का जीवन अस्त-व्यस्त होता है। उग्रवाद चाहे वह किसी भी धर्म में हो, मानवता के लिये उचित नहीं है। मानव का धर्म तो प्रेम है, इसे व्यक्ति विशेष या राजनैतिक रूप दिया जाना सरासर गलत है।

प्रारम्भ में दिये संकेतों के अनुसार ***विश्व के वर्तमान के लगभग सभी सत्ताधीश उपरोक्त ग्रहों की चपेट में आ ही रहे हैं। उनके द्वारा शासित क्षेत्र भी इसी तरह ग्रहों के कोप भाजन बन रहे हैं। तब ऐसी स्थिति भी निर्माण हो सकती है कि शासक मानसिक सन्तुलन खो बैठें या सम्बन्धित सेनापति शासकों का आदेश मानने से इंकार कर दें। इस तरह न चाहते हुए भी आज की मानवता भीषण युद्ध की लपेट में आ जाये। इसी तरह भीषण प्राकृतिक प्रकोपों के संकेत भी हैं ही।***

बैसाख माह का पूरा शुक्ल पक्ष (**5.5.2000** से **18.5.2000**) साधनाओं एवं विशेष मंत्र जप अनुष्ठान आदि के लिये महत्वपूर्ण है। **5.5.2000** की रात्रि १:५० से २:२५ बजे के बीच भी सभी प्रकार की साधनाओं को प्रारम्भ करने का और सफलता प्राप्त करने का श्रेष्ठ मुहूर्त है। **5.5.2000** के बाद भी प्रारम्भ की जाने वाली वे साधनाएं जिनमें सूर्य तत्व की प्रधानता है, अर्थात पराक्रम, वैभव, प्रतिष्ठा, गृह निर्माण, व्यवसायिक सम्बन्ध, इत्यादि कार्यों के लिये उपयोग किया जाना चाहिये।

14.5.2000, रविवार, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ ही सूर्य की वृष संक्रान्ति है। और इस दिन में ११:३० बजे से १२:३० बजे तक भी सर्वश्रेष्ठ और सर्वसफलतादायक मुहूर्त है। रायबरेली में शिविर है ही, प्रत्यक्ष गुरु चरणों में उपस्थित होकर पूरा-पूरा लाभ उठा लेना सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य होगा। यहां से लेकर ***वैशाखी पूर्णिमा १८ मई तक (कुल पांच दिन) का पूरा-पूरा लाभ उठा कर चैत्र और वैशाख में षष्ठ ग्रही योग के दुर्योगों से निश्चित रूप से बचा जा सकता है।***

गौधूली वेला : एक ऐसा मुहूर्त जो नित्य उपलब्ध है

गौधूली वेला के सम्बन्ध में ऋषियों का स्पष्ट निर्देश है कि यह सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त है और इसमें किसी प्रकार की बाधा या दोष नहीं लगता। वास्तव में गौधूलि वेला गौ के महत्व को प्रतिपादित करती है। गाय के शरीर में समस्त ३३ करोड़ देवताओं का वास है। यहां तक कि देवताओं की गाय के शरीर में निवास देते समय विलम्ब से पहुंचने के कारण लक्ष्मी को गाय के शरीर में स्थान प्राप्त न हो सका और तब गाय के गोबर में लक्ष्मी को स्थान दिया गया और इसीलिये किसी भी प्रकार के पूजन में गाय के गोबर का प्रयोग किया जाता है। गौधूली बेला का तात्पर्य उस समय से है जब सूर्य अस्त हो रहा हो और वन में घास चर कर सैकड़ों गायों का झुण्ड गांव में अपने स्वामी के घर लौट रहा हो। घर में बंधे इन गायों के बछड़े अपनी मां की याद में जोर-जोर से रम्भाते हैं, उनकी आवाज सुनकर गायें और जल्दी-जल्दी झपटती हुई दौड़ती घरों की तरफ बढ़ती है, उनकी चरणों से उठे धूल के बवण्डर पूरे आस-पास के वातावरण में छा जाता है। क्योंकि यह धूल का बवण्डर गायों के चरणों से स्पर्श होकर घड़ी दो घड़ी के लिये वातावरण आच्छादित कर देता है।

यही एक घण्टे का समय गौधूली वेला कहलाता है। अर्थात गायों के चरणों के धूली व्याप्त होने से वातावरण इतना अधिक पवित्र मात्र इसी एक घण्टे की अवधि के लिये हो जाता है, जिसमें नक्षत्र, चन्द्रमा, तिथि का कोई भी दोष व्याप्त नहीं हो पाता। नक्षत्रों की दृष्टि से भी यह एक संधिकाल होता है, जिस समय सूर्य अस्त हो रहा होता है, वातावरण मेंएकशान्ति प्रारम्भ होने लगती है, व्यक्ति जीवनचर्या के क्रिया कलाप से विमुक्त होकर घर की ओर प्रस्थान करता है, अथवा घर आ जाता है। इस समय मानस में यह भावना भी आती है, कि आज की चिन्ताएं समाप्त हुईं, कल की बात कल देखी जायेगी। इसीलिये मन्दिरों में, घरों में आरती सम्पन्न की जाती है, क्योंकि देव आह्वान का यह शुभ समय ही साधक चाहे तो इस समय का उपयोग साधना, तपस्या, मंत्र जप में करे अथवा कोई होटल, मधुशाला इत्यादि में जाकर व्यतीत करे . . . लेकिन साधक बुद्धिशील व्यक्ति है, उसे निर्णय लेना आता ही है।

ऊर्ध्वमुखी जीवन का प्रारम्भ और सिद्धि की उपलब्धि गुरु की प्राप्ति और गुरु की कृपा होने पर ही हो पाती है। जीवन में जो गुरु का महत्व है, ठीक वही महत्व नक्षत्र मण्डल में सूर्य का है। यही कारण है कि साधना क्रम में कहा गया है कि व्यक्ति सबसे पहले सूर्य और उसके बाद क्रमशः गणेश, दुर्गा, रुद्र और भगवान विष्णु की कृपा का पात्र बनते हुए अंत में गुरु तत्व का ज्ञाता बनकर पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त कर पाता है।

पंच देवों की उपासना और उसमें भी सर्वप्रथम सूर्य की उपासना का प्रतिपादन तथा किसी अन्य ग्रह की उपासना का पंच देवों की उपासना में उल्लेख न होना अपने आप में सूर्य के अद्वितीय महत्व को प्रगट करने के लिये पर्याप्त है। इतना ही नहीं सूर्य को प्राण कहा गया है, नारायण भी कहा गया है। यहां तक कि भगवान शिव को भी जब ब्रह्म हत्या का शाप लगा तब उससे मुक्ति के लिये सूर्य आराधना ही करनी पड़ी।

जीवन धारण के लिये ऊर्जा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और ऊर्जा का आधार भी सूर्य ही है। ***सूर्य के बिना सारा ब्रह्माण्ड प्रकाश विहीन होकर अमावस्या के घोर तिमिर में आच्छादित रहता है।*** सूर्योदय पर ही सारा संसार निद्रा रूपी तम से जागकर साधना रूपी सत्व की ओर उन्मुख हो गतिशील हो जाता है।

क्या यह भी सत्य नहीं है कि वर्तमान युग में सर्वाधिक उन्नतिशील एवं सत्ता तथा धन के वैभव से सम्पन्न ईसामसीह के अनुयायी इसलिये इतने सफल हो सके हैं, कि उनकी आराधना का आधार सूर्य का ही दिवस – अर्थात **रविवार** है।

'सूर्य पुराण', 'भविष्य पुराण' आदि तो मानों सूर्य की सत्ता के अतिरिक्त और किसी के महत्व को स्वीकार ही नहीं करते। सूर्य की महत्ता तो इतनी है, कि **जब भगवान शिव ने सबसे महत्वपूर्ण अवतार धारण किया तब हनुमान के रूप में सूर्य को गुरु बनाया।** इससे यह स्पष्ट है कि सूर्य आराध्य भी है और ***पूर्ण समर्थ गुरु के गुण भी सूर्य में पूर्णता के साथ विद्यमान है।*** इतना ही नहीं *बजरंग बली के द्वारा सूर्य को लीलने* की घटना वास्तव में सांकेतिक है। उसके द्वारा साधकों को यह बताया गया है कि यदि अजर-अमर नवनिधि के स्वामी और संसार भर में निर्बाध विचरण करते हुए संकट मोचक बने रहना है, तो सूर्य को पूरी तरह आत्मसात कर लिया जाए।

नक्षत्र मण्डल में भी पहली ही राशि मेष में सूर्य को उच्च स्थिति प्राप्त हो जाती है। सूर्य को आत्मा भी कहा गया है। सूर्य की साधना/उपासना से आयु, विद्या, यश, बल, ऐश्वर्य और पूर्ण सिद्धि प्राप्त होना तथा ***ब्रह्माण्ड निर्माण में सबसे पहले सूर्य का आविर्भाव होना (उसके बाद ही अन्य ग्रहों की उत्पत्ति हुई) – यह अपने आप में सूर्य के सर्वश्रेष्ठ महत्व को प्रतिपादित करती है।***

परम पूज्य सद्गुरुदेव जी के गृहस्थ स्वरूप धारण करने के समय निर्धारण में भी सूर्य की मेष राशि में स्थिति, भी सूर्य के महत्व को स्पष्ट करती है। इतना ही नहीं कलियुग में समस्त शक्ति महाविद्याओं में निहित होती है और इन महाविद्याओं में से चार महाविद्याओं की जयंतियां सूर्य के इसी मेष राशि में स्थित होते समय होना – यह बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। इससे स्पष्ट है कि वर्तमान युग में तंत्र साधना का आधार गुरु कृपा तो है ही सूर्य की अनुकूलता और साधना सोने में सुहागा की तरह उपयोगी है।

5.4.2000 से प्रारम्भ होने वाले इस 'विजय' नामक संवत्सर का पूरा समय अर्थात **25.3.2001** तक का पूरा वर्ष विशेष परिस्थितियों को दर्शाता है।

सूर्य **13.4.2000 से 13.5.2000 तक मेष राशि में उच्च का होकर स्थित होगा** और इस १२ अप्रैल से ही **चर्तुग्रही, पंचग्रही, षष्ठग्रही योग** भी इसी मेष राशि में १३ मई तक बन रहे हैं। स्पष्ट है कि इन दुर्योगों से संसार भर में तहलका मचे रहने की आशंका लगभग सभी ज्योतिष मर्मज्ञों ने की है। और इस परिस्थिति में सुधार तथा आसन्न संकटों से उबरने के उपाय में गुरु कृपा तो महत्वपूर्ण है ही सूर्य की आराधना महत्वपूर्ण है।

सूर्य की विशिष्ट महत्ता को स्पष्ट करते हुए अपने संन्यासी शिष्यों के समक्ष **भगवत्पाद सद्गुरुदेव निखिलेश्वरानन्द जी** ने स्पष्ट किया था कि किसी भी कार्य को किस क्षण विशेष में प्रारम्भ किया जाए, यह बहुत अधिक महत्वपूर्ण होता है। और सिद्धाश्रम में इस तथ्य को सर्वाधिक बल दिया जाता है। **भगवत पूज्यपाद दादागुरुदेव स्वामी सच्चिदानन्द जी** ने जब सिद्धाश्रम के एक महायोगी, अपने प्रिय शिष्य गुणातीतानन्द जी को गृहस्थ आश्रम में आने के लिये और संसार में साधनाओं के प्रचार के लिये भगवान श्रीकृष्ण के गुरु संदीपनि का जन्म कराया – उस समय भी; हिरण्यगर्भ को शंकराचार्य के रूप में जन्म लेते समय भी; और यहां तक कि निखिलेश्वरानन्द जी के डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली जी के आविर्भाव के समय भी; – इन तीनों युगान्तरकारी क्षणों में सूर्य की उच्च स्थिति मेष पर ही थी। आगे तो साधकों को यह स्पष्ट है ही कि इन तीनों विभूतियों ने पूरे विश्व में उल्लेखनीय कार्य कर संसार को आध्यात्मिक सफलता में कितनी ऊंचाईयों तक पहुंचाया है।

इससे अपने आप में यह बात प्रमाणित हो जाती है कि यदि व्यक्ति दैहिक, दैविक, भौतिक, सभी प्रकार की तांत्रिक, मांत्रिक साधनाओं में निष्णात होना चाहता हो, पूर्ण ऐश्वर्य का स्वामी बनकर नर से नारायण बनने तक की कैसी भी इच्छा हो, उसकी पूर्ति सूर्य की साधना एवं अनुकूलता से सम्भव है।

अप्रैल माह में १२ तारीख से मई की १३ मई तक सूर्य उच्च राशि में स्थित है। इस स्थिति को देखते हुए प्रत्येक साधक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने जीवन में अंधकार का नाश कर नवीन सूर्योदय स्थापित करने हेतु साधना और कर्म शक्ति का विकास करे, साथ ही ग्रहों की गति से विशेष लाभ प्राप्त करे।

सूर्य साधना से लाभ

१. इसके द्वारा प्रत्येक साधना में सफलता मिलती है।

२. पौरुष, सम्मोहन के क्षेत्र में सूर्य साधना अनुकूल है।

३. काल पर विजय सूर्य साधना से ही सम्भव है।

४. मृत्यु पर विजय तथा रोग निवारण के लिये सूर्य साधना राम बाण की तरह अचूक है।

५. ऐश्वर्य या सम्पत्ति प्राप्ति सूर्य साधना से सम्भव है।

६. हर प्रकार के संकट निवारण के लिये सूर्य सहायक होते हैं, क्योंकि सूर्य संकटमोचक हनुमान जी के भी गुरु हैं।

७. कुष्ठ रोग या शरीर की विकलांगता से मुक्ति या नेत्रों की ज्योति सूर्य साधना से ही सम्भव है।

८. किसी देवी या देवता के श्राप जन्य कष्ट का निवारण भी सूर्य की ही साधना से सम्भव है।

९. निर्धनता किसी भी कारण से हो, सूर्य साधना से उसका निदान होता ही है।

१०. सन्तानहीनता, नपुंसकता का नाश सूर्य की कृपा से होता है।

११. सूर्य प्रज्ञा के पति हैं, अतः शोध या नवीन विचार की जहां आवश्यकता है, सूर्य साधना अनुकूल होती है।

१२. अध्यात्म का तो सूर्य आधार ही है, अतएव कुण्डलिनी जागरण तथा सातों चक्रों के पूर्ण जागरण में सूर्य साधना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

१३. मठ, मन्दिर, विद्यालय या किसी ऐसी संस्था प्रारम्भ करने की यदि अभिलाषा हो, जिससे मानव मात्र का कल्याण हो और ऐसी संस्था दीर्घकाल तक बिना बाधा कार्य कर सके, तो सूर्य साधना से ही ऐसा सम्भव हो सकता है।

१४. समाज के कमजोर वर्ग के लिये कार्य करने वाले

सूर्य को अर्घ्य

सूर्य को अर्घ्य सर्वाधिक प्रिय है। जो मानव भगवान सूर्य को जल, दूध, कुश का अग्रभाग, घी, दही, शहद तथा लाल कनेर (बेला, कमल या बिल्व पत्र भी लिया जा सकता है) आदि के साथ वन्दन और थोड़ा सा जल किसी पात्र में लेकर सूर्य की ओर मुख कर एक पैर से खड़े होकर अर्घ्य देता है, तो सूर्य उससे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। कहा जाता है कि यह कार्य हजार गऊ दान के बराबर पुण्य देता है। यदि पात्र चांदी का हो तो लाख गुना और यदि सोने के पात्र में अर्घ्य दिया जाए, तो कोटि गुना फल देने वाला है।

कार्यकर्ताओं के मनोबल बढ़ाने और पूर्ण यशस्वी बनने के लिये सूर्य साधना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

१५. शासन सत्ता का तो आधार ही सूर्य है। सत्य के प्रतिरूप **महाराज हरिश्चन्द्र** ने सूर्य वंश में ही जन्म लिया और सूर्य साधना से ही रावण की उपस्थिति में अपने महल में बैठे-बैठे ही ४०० मील दूर चर रही गाय पर आक्रमण करने वाले सिंह को आक्रमण से पूर्व ही मात्र चावल के दाने फेंक कर सिंह का वध कर गाय की रक्षा कर रावण जैसे सर्वसमर्थ तंत्र सम्राट शिव भक्त को भी चकित कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाने को विवश कर दिया था। यह उनकी सूर्य साधना का ही सुफल था।

१६. किसी भी तरह के संकट से निवारण और किसी भी मनोकामना की पूर्ति के लिये सूर्य साधना उपयुक्त है।

सूर्य साधना

इस साधना **13.4.2000** से **13.5.2000** के बीच किसी भी दिन प्रारम्भ किया जाना उत्तम है। बाद में यदि साधना प्रारम्भ करनी हो तो **4.6.2000, कोई रविवार** या **सप्तमी** तिथि अनुकूल है। साधना को सूर्योदय से सूर्यास्त के बीच ही प्रारम्भ करें। अपने सामने चौकी या भूमि पर कुंकुम से यंत्र का अंकन कर लें। उस पर लाल वस्त्र बिछा दें। गेहूं की एक ढेरी बनाकर उस पर **मंत्र सिद्ध प्राण प्रतिष्ठित 'सूर्य यंत्र'** का निम्न मंत्र बोलते हुए स्थापन करें–

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेश यन्नमृतं मर्त्यन्च।
हिरण्येन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन॥

फिर दोनों हाथ जोड़ कर सूर्य का ध्यान करते हुए यंत्र पर कनेर (या कोई अन्य लाल पुष्प) चढ़ाएं –

जपा कुसुम संकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
तमोऽरिं सर्व पापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥

बारह आदित्यों का स्मरण कर यंत्र पर कुंकुम से १२ बिन्दियां लगाएं व सूर्य के द्वादश नामों का उच्चारण करें –

सूर्य द्वादशनाम स्तोत्र

आदित्यः प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकरः,
तृतीयं भास्करः प्रोक्तं चतुर्थं तु प्रभाकरः।
पंचमं तु सहस्रांशुः षष्ठं त्रैलोक्य लोचनः,
सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं च विभावसुः।
नवमं दिनकरः प्रोक्तो दशमं द्वादशात्मकः।
एकादशं त्रयोमूर्तिं द्वादशं सूर्य एव च॥

फिर '**स्फटिक माला**' से यंत्र के समक्ष निम्न की मंत्र का १२ दिन तक नित्य १२ माला मंत्र जप करें –

सूर्य मंत्र

॥ ॐ घृणिः सूर्य आदित्य नमः ॥

Om Ghrinnih Soorya Auditya Namah

इसके बाद सूर्याष्टक पढ़ते हुए सूर्य की वन्दना करें–

शिवप्रोक्त सूर्याष्टक

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तुते॥१॥
सप्त अश्व रथमारूढं प्रचण्डं कश्यपं आत्मजम्।
श्वेत पद्म धरं देवं तं सूर्य प्रणमाम्यहम्॥२॥
लोहितं रथं आरूढं सर्व लोक पितामहम्।
महा पाप हरं देवं तं सूर्य प्रणमाम्यहम्॥३॥
त्रैगुण्यं च महा शूरं ब्रह्मा विष्णु महेश्वरम्।
महा पाप हरं देवं तं सूर्य प्रणमाम्यहम्॥४॥
बृंहितं तेज पुन्जं च वायुं आकाश मेव च।
प्रभुं च सर्व लोकानां तं सूर्य प्रणमाम्यहम्॥५॥
बंधुक पुष्प संकाशं हार कुण्डल भूषितम्।
एक चक्रधरं देवं तं सूर्य प्रणमाम्यहम्॥६॥
तं सूर्य जगत् कर्तारं महा तेजः प्रदीपनम्।
महा पाप हरं देवं तं सूर्य प्रणमाम्यहम्॥७॥
तं सूर्य जगतां नाथ ज्ञान विज्ञान मोक्षदम्।
महा पाप हरं देवं तं सूर्य प्रणमाम्यहम्॥८॥

पाठ के पश्चात सूर्य को जल से अर्घ्य दें। साधना समाप्ति के बाद समस्त सामग्री को जल में विसर्जित करें।

साधना सामग्री पैकेट – 300/-

सूर्य साधना के लिये विशेष मुहूर्त

१. रविवार का दिन सूर्य साधना के लिये अनुकूल है।

२. तिथियों में सप्तमी तिथि सूर्य साधना के लिये सर्वश्रेष्ठ है। यदि रविवार और सप्तमी दोनों का संयोग हो तो और भी अधिक फल देने वाला है।

३. शास्त्रों में कहा गया है, कि यदि शुक्ल पक्ष में सप्तमी तिथि के साथ रोहिणी नक्षत्र हो, तो सूर्य साधना का फल सदा कोटि गुणा होता है।

४. सप्तमी के साथ ही उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्र भी हो तो सूर्य साधना के लिये और भी अनुकूल है।

५. इसके अतिरिक्त इस वर्ष के उत्तरार्ध में (**15.8.2000** से **14.9.2000**) सिंह राशि में सूर्य स्थित होने से ये अवधि भी सूर्य साधना के लिये विशेष अनुकूल है।

मेष
(चू, चे, चो, ला, ली, लू, ले, लो, अ)

समय की चाल को पहिचान कर अपने आपमें पूर्ण परिवर्तन तो लाना ही होगा, क्योंकि जिस मंथर गति से आप चल रहे हैं, वह आपके लिये हितकर नहीं है। इससे शत्रु बाधा तो उत्पन्न होगी ही, साथ ही आर्थिक हानि भी सम्भव है। कारोबारी मामलों में आई उदासीनता और जीवन के प्रति अरुचि की भावना का त्याग करना आवश्यक है। परिवार में चला आ रहा तनाव समाप्त होगा। संतान की ओर से अनुकूलता प्राप्त होगी। मान-सम्मान को बनाये रखने का प्रयत्न करें। लम्बी एवं धार्मिक यात्राओं के योग बनेंगे, परन्तु ये अधिक व्ययशील नहीं होंगी। मित्रों से सामान्यतः सहयोग ही प्राप्त होगा, परन्तु शत्रुओं से सावधानी अपेक्षित है। वाहन प्रयोग में सावधानी बरतें। माह के अनुकूल दिवस – १०, १५, १९, २५, ३०.

वृष
(ई, उ, ए, ओ, वा, वी, वू, वे, वो)

जल्दबाजी में कोई निर्णय न लें, अपितु उस पर पूरी तरह सोच विचार कर लें। लाभ की स्थितियां बनेंगी। पारिवारिक मामलों की उपेक्षा न करें, अन्यथा कलह बढ़ेगी। मित्रों एवं सम्बन्धियों से आपको लाभ प्राप्त होगा एवं शत्रु कमजोर होंगे। नये कारोबार एवं नौकरी आदि के बारे में विचार किया जा सकता है। बेरोजगार व्यक्ति रोजगार प्राप्ति के लिये प्रयास करें। दाम्पत्य सुख में वृद्धि होगी, लेकिन परिवार में किसी सदस्य का स्वास्थ्य आपको चिन्तित कर सकता है। इस माह आपके लिये ८,१२,२०,२५,२७ अनुकूल हैं।

मिथुन
(का, की, कू, घ, ङ, छ, के, को, हा)

अधिक जल्दबाजी में आपके बने बनाये कार्य भी बिगड़ सकते हैं, अतः संयम एवं धैर्य का सहारा लें। जमीन-जायदाद, वाहन आदि के क्रय-विक्रय में पूरी तरह सावधानी बरतें। अदालती मामले उलझने से अतिरिक्त मानसिक तनाव प्राप्त होगा। मित्रों एवं सम्बन्धियों का सहयोग प्राप्त होगा। आपके हितैषियों में कुछ ऐसे व्यक्ति भी होंगे, जो आपसे पूर्व परिचित नहीं होंगे। परिस्थितियां आपके विपरीत हैं, अतः साधनात्मक शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करें, ज्यादा उचित रहेगा कि आप 'धूमावती साधना' सम्पन्न करें। नौकरी आदि में स्थानान्तरण के योग निर्मित होंगे, पदोन्नति भी प्राप्त हो सकती है। आर्थिक व्यय भार में वृद्धि होगी। इस माह में कोई नवीन व्यवसाय प्रारम्भ न करें। आपके लिये अनुकूल तारीखें १५, १८, २२, २६, २८ हैं।

कर्क
(ही, हु, हे, हो, डा, डी, डू, डे, डो)

शारीरिक पीड़ा बढ़ने से मन अशान्त तो रहेगा ही, साथ ही आर्थिक स्थिति भी कमजोर होगी और आप तनाव ग्रस्त होंगे। किसी भी प्रकार की लापरवाही बरतना अनुकूल नहीं होगा। मित्रों एवं सम्बन्धियों से किसी भी प्रकार के सहयोग की आकांक्षा न करें, उनकी तरफ से आपको तनाव ही प्राप्त होगा और आपके स्वयं के प्रयास ही सार्थक होंगे। दाम्पत्य जीवन में मधुरता आयेगी तथा संतान पक्ष आपके अनुकूल रहेगा। कारोबारी यात्राएं करनी पड़ सकती हैं, जो भविष्य में आपके लिये उपयोगी सिद्ध होंगी। रचनात्मक एवं आयात-निर्यात के कार्यों में आपको विशेष सफलता प्राप्त हो सकती है। पूर्ण अनुकूलता प्राप्ति के लिये **'हनुमान साधना'** सम्पन्न करें। इस माह की अनुकूल तारीखें हैं ११, १६, १९, २३, २८.

सिंह
(मा, मी, मू, मे, मो, टा, टी, टू, टे)

बीते समय का ख्याल त्याग कर वर्तमान पर ध्यान दें। किसी भी निर्णय को लेने में अनावश्यक विलम्ब न करें, अन्यथा बाद में आपको पछताना पड़ सकता है। कारोबारी यात्रा लाभकारी सिद्ध होगी। युवा वर्ग अपने भविष्य की कार्य योजना बनाने में व्यस्त रहेगा। किसी के बहकावे में आकर कोई कार्य न करें। जमीन-जायदाद सम्बन्धी मामलों को लेकर अदालती व्यस्तता रहेगी। समाज में मान-सम्मान को बनाये रखने का प्रयत्न करें। **'काल भैरवाष्टक'** का कुछ दिन तक नियमित रूप से पाठ करना आपके लिये श्रेयस्कर होगा। दाम्पत्य सुख में वृद्धि होगी। दुर्घटना के योग तो नहीं है, फिर भी वाहन प्रयोग में विशेष सावधानी बरतनी आवश्यक है। इस माह की अनुकूल तारीखें – ८, १२, १६, २०, २६, २८.

कन्या
(टो, पा, पी, पू, ष, ण, ठ, पे, पो)

धार्मिक एवं मांगलिक प्रसंगों में व्यस्तता रहेगी, जिनमें व्यर्थ के धन व्यय से तनाव होगा, इसलिये संयम से काम लें और मानसिक शान्ति बनाये रखें। छोटे-छोटे विवादों की ओर ध्यान न दें। मित्रता बनाये रखने का प्रयत्न करें, क्योंकि मित्र ही अच्छे-बुरे समय में आपके काम आयेंगे। कोई भी निर्णय जल्दबाजी में न लें, अन्यथा मान-सम्मान की क्षति के साथ-साथ आर्थिक हानि भी होगी। मौलिक सूझ-बूझ के साथ ही निर्णय लें। बेरोजगार व्यक्ति आर्थिक विकास प्राप्त करने में किसी भी प्रकार की लापरवाही न बरतें। **लक्ष्मी** या **कुबेर** साधना आपके जीवन में आर्थिक सुदृढ़ता हेतु अनुकूल है। माह की अनुकूल तारीखें हैं – ११, १६, २०, २४, २९.

तुला
(रा, री, रू, रे, रो, ता, ती, तू, ते)

इस माह आपके लिये सफलतायें प्राप्त करना तभी सम्भव हो पायेगा, जब आपके पास साधनात्मक शक्ति का आधार होगा। **'गुरु साधना'** करने से आपके जीवन में स्थिरता आयेगी और आपका भाग्योदय हो सकेगा। धार्मिक एवं मांगलिक प्रसंगों में रुचि रहेगी तथा आर्थिक व्यय भार में वृद्धि होगी। अनेक प्रकार के व्यर्थ के कार्यों में धन व्यय होगा। मित्रों एवं सम्बन्धियों से सहयोग की आशा करना पीड़ादायक ही होगा। यात्रा में सावधानी बरतें, दुर्घटना के योग प्रबल हैं। स्वास्थ्य के प्रति उदासीनता न बरतें तथा पारिवारिक उत्तरदायित्वों को धैर्यपूर्वक निपटायें। शत्रु विश्वासघात कर सकते हैं, अतः अत्यन्त संयम एवं सावधानी से कार्य करें। आपके लिये अनुकूल तारीखें हैं – १२, १४, १७, २२, २६

सर्वार्थ, अमृत, रवि, पुष्य, द्विपुष्कर, सिद्धि योग

इन दिवसों पर आप किसी भी साधना को सम्पन्न कर सकते हैं।

6 अप्रैल	–	सर्वार्थ सिद्धि योग
12 अप्रैल	–	रवि योग, पुष्य योग
16 अप्रैल	–	सर्वार्थ सिद्धि योग
23 अप्रैल	–	सर्वार्थ सिद्धि योग
6 मई	–	रवि योग, सर्वार्थ सिद्धि योग, अमृत सिद्धि योग
9 मई	–	पुष्य योग
12 मई	–	सिद्धि योग, सर्वार्थ सिद्धि योग
14 मई	–	सर्वार्थ सिद्धि योग

वृश्चिक

(तो, ना, नी, नू, ने, नो, या, यी, यू)

अपने कारोबारी सहयोगियों पर विशेष ध्यान दें तथा भली भांति सोच विचार कर ही निर्णय लें। शत्रु आपके ऊपर हावी हो सकते हैं एवं अचानक ही कई प्रकार की बाधाएं आपके समक्ष उत्पन्न हो सकती हैं। उचित यही होगा, कि आप **'भैरव साधना'** सम्पन्न करें। धन को व्यर्थ में व्यय होने से बचायें तथा खर्चों को नियंत्रित करें। मित्रों एवं सम्बन्धियों का सामान्य सहयोग आपको प्राप्त होगा। किसी विवाद के उत्पन्न होने पर मानसिक सन्तुलन बनाये रखें। सड़क पर वाहन चलाते समय सावधानी बरतें। स्वास्थ्य सामान्य रहेगा एवं दाम्पत्य सुख में वृद्धि होगी। आपके लिये अनुकूल तारीखें – १२, १८, २४, २५, २७ हैं तथा २, ९ प्रतिकूल हैं।

धनु

(ये, यो, भा, भी, धा, फा, ढा, भे)

अपनी सामाजिक मर्यादा को ध्यान में रखें तथा मान-सम्मान को बनाये रखें। किसी के बहकावे में आकर कोई कार्य करना आपके लिये जोखिम भरा हो सकता है। पारिवारिक उत्तरदायित्व की उपेक्षा करना अनुकूल नहीं होगा। दाम्पत्य सुख एवं सन्तान सुख में न्यूनता आयेगी। धार्मिक एवं मांगलिक प्रसंगों को लेकर यात्रा योग बनेंगे, यात्रा सुखद होगी। नौकरी आदि में पूरी रुचि लें तथा अधिकारियों से सहयोगी व्यवहार बनाये रखें। किसी अप्रिय स्थिति के आने पर स्वयं को संयमित बनाये रखें। विपदाओं के निवारण के लिये **'गणपति साधना'** सम्पन्न करें। इस माह की अनुकूल तारीखें – ११, १६, १८, २१, २५, २७ हैं।

मकर

(भो, जा, जी, खू, खे, खो, गा, गी)

इस माह में आपके सामने कुछ जटिल परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं। स्वयं मौलिक निर्णय लेने में असमर्थ रहने पर विश्वासपात्रों और शुभचिन्तकों का सहयोग लेना भी आवश्यक होगा। जीवनसाथी से वैचारिकता बनाये रखें एवं मतभेद की स्थिति में संयम बरतें। कारोबारी स्थिति में विस्तार होगा, परन्तु अनुबंधों पर गहन विचार करने के उपरान्त ही कोई निर्णय लें। सन्तान पक्ष की ओर से अनुकूल एवं प्रसन्नतादायक समाचार प्राप्त होंगे। मांगलिक कार्यों में व्यस्तता रहेगी। किसी भी वाद-विवाद की स्थिति में धैर्य एवं संयम से काम लें। **'हनुमान साधना'** सम्पन्न करने से अनुकूलता प्राप्त होगी। इस माह की अनुकूल तिथियां – १३, १५, २१, २४, २५, २९ हैं। शुक्रवार के दिन विशेष सतर्क रहें।

कुम्भ

(गू, गे, गो, सा, सी, सू, से, सो, दा)

आपका यह माह मानवता की सेवा में व्यतीत होगा और समाज में मान सम्मान की प्राप्ति होगी। दूसरे लोग भी आपकी सहायता के लिये तत्पर रहेंगे। दाम्पत्य सुख में वृद्धि होगी तथा संतान की ओर से अनुकूलता एवं सुखद समाचार प्राप्त होंगे धार्मिक एवं मांगलिक कार्यों में व्यस्तता रहेगी। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह माह कमजोर ही रहेगा, स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होगी। यात्रा योग सुखद सिद्ध होंगे, परन्तु सड़क पर चलते समय सावधानी अपेक्षित है। कारोबार का विस्तार होगा तथा आर्थिक अनुकूलता प्राप्त होगी। इस माह की अनुकूल तारीखें हैं – १०,१३,१७,२०,२३,२८.

ज्योतिषीय दृष्टि से यह माह

इस माह काल सर्प योग होने से विश्व के कुछ देशों में अशान्ति होने की सम्भावना है, खासकर पश्चिमी देशों में युद्ध जैसी स्थितियां निर्मित होने का संकेत मिलता है। इसी माह में षडग्रही योग भी बन रहा है तथा चार प्रमुख ग्रह – मंगल, बुध, बृहस्पति और शनि -- ये भी अस्त हो रहे हैं। यह योग विश्व के कुछ राष्ट्रों में भयंकर आतंक, अराजकता या प्राकृतिक विपदा को निमंत्रण दे रहे हैं। विशिष्ट नेता के पद से च्युत होने की अथवा निधन होने के आसार हैं। साथ ही किसी मुस्लिम राष्ट्र में हत्याकाण्ड या गृहयुद्ध जैसी स्थिति बन सकती है, जिससे राष्ट्र के किसी उच्च स्तरीय नेता को पद त्यागने के लिये बाध्य होना पड़ सकता है।

मीन

(दी, दू, थ, झ, दे, दो, चा, ची)

इस बार शत्रु आपके खिलाफ कुछ गहरी चालें चल रहे हैं, अतः सावधानी और सुरक्षा दोनों ही अनिवार्य होंगे। **'काल भैरव साधना'** सम्पन्न करना आपके लिये आवश्यक है। मित्रों के साथ छोड़ जाने से तनाव होगा। स्वयं का परिश्रम ही आपका सहायक सिद्ध होगा। जीवनसाथी से मतभेद समाप्त होंगे तथा सन्तान की ओर से सुखद एवं अनुकूल समाचार प्राप्त होंगे। सभी सम-विषम परिस्थितियों में सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखें। अधिकारियों एवं सहकर्मियों से मेल-मिलाप बनाये रखें। नये कारोबार के विस्तार का विचार फिलहाल त्याग दें। माह की अनुकूल तारीखें – १५,१६,२०,२२,२३,२५.

इस मास के व्रत, पर्व एवं त्यौहार

5 अप्रैल	– चैत्र शुक्ल	१	विक्रम संवत् २०५७ प्रारम्भ नवरात्रि प्रारंभ, कलश स्थापन
7 अप्रैल	– चैत्र शुक्ल	३	गौरी तृतीया, मत्स्य जयंती
11 अप्रैल	– चैत्र शुक्ल	७	दुर्गा अष्टमी
12 अप्रैल	– चैत्र शुक्ल	८	नवरात्रि समाप्त, राम नवमी
14 अप्रैल	– चैत्र शुक्ल	११	कामदा एकादशी
16 अप्रैल	– चैत्र शुक्ल	१३	अनंग त्रयोदशी, प्रदोष, महावीर जयंती
30 अप्रैल	– वैशाख कृष्ण	११	वरुथिनी एकादशी
1 मई	– वैशाख कृष्ण	१२	सोम प्रदोष व्रत
6 मई	– वैशाख शुक्ल	३	अक्षय तृतीया, परशुराम जयंती
8 मई	– वैशाख शुक्ल	५	आदि शंकराचार्य जयंती
14 मई	– वैशाख शुक्ल	११	मोहिनी एकादशी, रामानुजाचार्य जयंती
15 मई	– वैशाख शुक्ल	१२	सोम प्रदोष

शब्द शक्ति : ब्रह्म शक्ति

स्वर कहें या व्यंजन, कोई भी शब्द अपने मूल रूप में है एक ध्वनि और ध्वनि स्वयं में है एक उर्जा । इस रूप में हमारे मनीषियों का वह कथन स्वयमेव अर्थवान हो जाता है जहां उन्होंने शब्द को साक्षात् ब्रह्म स्वरूप माना है । ब्रह्म अर्थात् शाश्वतता एवं शक्ति का आदि स्रोत . . .

स्वामी विवेकानन्द ने एक स्थान पर इस बात की चर्चा की है कि कैसे जब उनके गुरुदेव श्री रामकृष्ण परमहंस कहीं प्रवचन देने जाते थे तो हजारों ही नहीं वरन् लाखों की तादाद में व्यक्ति उमड़ पड़ते थे। छतों पर, मुंडेरों पर या जहां कहीं भी सम्भव हो, बैठने के बाद जब अन्य कहीं उन्हें स्थान न मिलता तो वे पेड़ों पर-यहां तक कि पेड़ों की टहनियों पर वे मुग्ध भाव से बैठे श्री रामकृष्ण जी की वाणी से निःसृत वाक्यों को यूं सुनते रहते थे मानों अमृत-पान कर रहे हों।

आगे स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि आश्चर्य है कि वह काल जिसे बंगाल का पुनर्जागरण काल (renaissance period) कहा गया है, जिस काल में बंगाल में एक से बढ़कर एक मूर्धन्य विद्वान हुए तब उन विद्वानों की सभा में तो कठिनाई से कुछ एक व्यक्ति ही पहुंचते थे जबकि लगभग अनपढ़ श्री रामकृष्ण की सभाओं में यह स्थिति हो जाती थी।

स्वामी विवेकानन्द स्वभाव से जिज्ञासु व तार्किक प्रकृति के थे और उनके मानस में इस बात का रहस्य जानने की जिज्ञासा बनी रही।

कालांतर में उन्होंने इस बात का रहस्य खोज ही निकाला और कहा- *'अब मैं समझ गया हूं कि चमत्कार उनके शब्दों में नहीं वरन् उनकी वाणी में छिपा हुआ था। ठाकुर (श्री रामकृष्ण जी) जो कुछ भी कहते थे उसके पीछे उनकी ओज शक्ति कार्य कर रही होती थी और इसी से वह प्रत्येक के लिए हृदयग्राही बन जाती थी।'*

स्वामी विवेकानन्द का यह विवेचन आज भी पूर्णरूपेण प्रामाणिक है। वास्तव में जो मूल रहस्य है वह शब्दों के जाल में न छिपा होकर छिपा होता है उस व्यक्तित्व के भीतर जो उन्हें उच्चरित कर रहा होता है। शब्द ब्रह्म है, यह बात सत्य है किन्तु उससे भी अधिक सत्य है यह बात कि किस माध्यम से निःसृत हो रहा है कोई वाक्य।

आज स्वामी विवेकानन्द के विवेचन की प्रासंगिकता इस कारण से और भी अधिक बढ़ गयी है क्योंकि यह युग है तीव्रता से विकसित हो गए संचार माध्यमों या मीडिया का जहां एक शब्द कहते ही तीव्रता से चारों ओर फैल जाता है।

शब्दों से ही सृजित होते हैं मंत्र और शायद इस बात को अब बार-बार दोहराने का कोई अर्थ नहीं रह गया है कि हमारे मुख से निकला प्रत्येक वाक्य ही एक मंत्र समान होता है या जो मंत्रों का प्रभाव होता है वही हमारे मुख से निकले शब्दों का भी होता है अतः वाक्यों के प्रयोग में सावधानी रखनी चाहिए।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान अपनी श्रेष्ठता के उपरान्त भी जिस कारण से अप्रामाणिक मान लिया गया उसके मूल में इस बात का भी बहुत बड़ा योगदान है कि भारतीय समाज ने समय के साथ कदम मिला कर चलना नहीं सीखा। वह ग्रंथों

की एक तोतारटंत में पड़ा रह गया, उसने उन ग्रंथों में निहित ज्ञान की युग के अनुरूप व्याख्या करने का प्रयास नहीं किया।

पूज्यपाद गुरुदेव ने इसी विसंगति की ओर ध्यान दिलाने के लिए इस पत्रिका के साथ 'विज्ञान' शब्द को जोड़कर यह चेतना देने का प्रयास किया है कि जो ज्ञान, विज्ञान की कसौटियों पर खरा नहीं उतरेगा वह अप्रामाणिक मान लिया जाएगा, शिष्यगण इस बात का भी ध्यान रखें।

वर्तमान युग में वैज्ञानिक इस बात पर शोधरत हैं कि क्या कारण है कि भारत द्वारा प्रतिपादित ॐ शब्द के गुंजरण से मन को एक असीम शांति प्राप्त होती है।

वे विवेचन कर रहे हैं कि इस वर्ण का वैज्ञानिक दृष्टि से विन्यास क्या है अर्थात् इस शब्द के गुंजरण से किस तरंग-दैर्घ्य (wave-length) की तरंगें उत्पन्न होती हैं, क्या इसी तरंग-दैर्घ्य की तरंगें उत्पन्न करके उनका उपयोग किसी चिकित्सकीय कार्य में किया जा सकता है?

वर्तमान में इंग्लैंड के एक वैज्ञानिक हैं – सेडले जिन्होंने फ्रेंच वैज्ञानिक गैनार्ड के साथ शोध करके यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्येक वर्ण का स्वयं में एक रंग भी होता है।

. . . और दूसरी ओर जो पुरातन पंथी हैं कि उसी पांच शताब्दी पुराने विवेचन को घोट रहे हैं। जो प्राचीन है निःसंदेह उसका महत्व है किन्तु केवल वहीं तक जहां तक हमें उससे एक दृष्टि प्राप्त हो।

हमारे ऋषि निःसंदेह हमारे लिए प्रणम्य हैं, हमारी रगों में उनका ही रक्त बह रहा है, उन्हीं की अनुश्चेतना से हमारे भीतर एक ऐसे जीवन का संचार हो रहा है जो स्वयं में पश्चिम की तरह से भावना-शून्य नहीं हुआ है, हजारों विसंगतियों के बाद भी हम भारतीयों के जीवन में भावना के लिए स्थान है किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं लगाया जा सकता कि हम रूढ़िवादी बने रहें, भक्ति मार्ग के अनुगामी बन जाएं।यह प्राणश्चेतना तो नहीं देनी चाही थी हमारे ऋषियों ने हमें।

सद्गुरुदेव ने अपने एक प्रवचन में कहा कि संसार में सब कुछ नष्ट हो जाता है, देह भी समय आने पर स्वरूप बदल देती है, लेकिन ब्रह्माण्ड में शब्द जो उच्चरित हो गया, वह कभी भी नष्ट नहीं हो सकता। इस लोक से परे ब्रह्माण्ड में वह लोक विद्यमान है जहां शब्द आज भी गुंजरित हो रहे हैं। यदि साधक अपने भीतर ग्राह्य शक्ति को उस स्तर तक ले जाये तो वह आज भी महाभारत युद्ध के दौरान भगवान श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया गीता का शाश्वत ज्ञान उनकी मूल वाणी में सुन सकता है।

पांच कर्मेन्द्रियों में जिह्वा जहां स्वाद का अनुभव कराती है, वहीं जिह्वा शब्द भी उच्चरित करती है और शब्द वर्णमाला के ५२ अक्षरों से ही बने हैं। इन्हीं शब्दों से मंत्र भी उच्चरित किये जा सकते हैं। इन्हीं शब्दों से प्रेम प्रगट किया जा सकता है, इन्हीं शब्दों से क्रोध और अपशब्द का उच्चारण भी किया जा सकता है।

जब साधक अपने गुरु के पास पहुंचता है, तो उसे पहली आज्ञा यह प्राप्त होती है मौन रहने की। यह बात बड़ी ही विचित्र लगती है कि शब्दों के प्रवाह को गुरु क्यों रोकते हैं? ***इस मौन साधना के माध्यम से गुरु यह सिखाते हैं कि तुम्हारे भीतर जो शब्दों का जाल बना हुआ है, जो तुम्हारी शक्ति को अवरुद्ध किये हुए है, उन शब्दों के जाल में से तुम्हारे लिये क्या उपयोगी शब्द हैं और क्या अनुपयोगी शब्द हैं, इसका स्वयं मंथन करो और जब इस मंथन के पश्चात जिह्वा जब शान्त हो जाती है, और आधार भूमि तैयार होती है तब गुरु द्वारा गुरु मंत्र प्रदान किया जाता है।***

'ॐ' को प्रणवाक्षर अर्थात पहला शब्द माना गया है। यदि शान्त मन से केवल 'ॐ' शब्द का ही उच्चारण अल्प काल के लिये ही किया जाये तो पूरे शरीर में एक अपूर्व शक्ति और शान्ति आ जाती है। शब्द का स्थान जिह्वा नहीं है, शब्द का स्थान नाभि स्थित मणिपुर चक्र ही है। जिह्वा तो एक माध्यम भर है अर्थात वही शब्द प्रभावकारी है जो मणिपुर चक्र से ऊपर उठता हुआ अनाहत, विशुद्ध इत्यादि चक्रों को पार करता हुआ जिह्वा के माध्यम से बाहर गुंजरित होता है। अन्य शब्द तो निष्प्रभावी हैं, इसीलिये शास्त्रों में बार-बार कहा जाता है कि या तो मौन रहो या मितभाषी अर्थात कम से कम बोलो। बोलने में जो शक्ति क्षय होती है, उस शक्ति की आपूर्ति के लिये पूरे कुण्डलिनी चक्रों को अत्यधिक प्रयास करना पड़ता है। कुण्डलिनी जागरण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा ज्यादा बोलना अर्थात अतिभाषी होना है।

एक गुरु मंत्र प्राप्त होता है और शिष्य के लिये वह जीवन भर की निधि बन जाता है और गुरु मंत्र का उच्चारण केवल जिह्वा के माध्यम से सम्भव ही नहीं है, क्योंकि गुरु मंत्र देते समय सद्गुरु कहते हैं कि इस मंत्र को अपनी श्रवणेन्द्रियों द्वारा सीधा भीतर उतारो और जब वह पूरे रोम-रोम में समाहित हो जाये तो उसे उसी रूप में एक प्रवाह देते हुए अपने

मुख पर लाओ। यही साधना का विधान है। यही मंत्र जप का विधान है, चाहे वह मंत्र जप मौन हो, वाचिक हो या उपांशु हो।

गांधी जी के जीवन की एक घटना है। साबरमती आश्रम में एक पिता अपने बालक को लेकर आया और बोला – *''आपके शब्दों में बड़ा प्रभाव है, और आपकी आज्ञा पूरा देश मानता है। यह बालक, गुड़ बहुत अधिक खाता है, इससे केवल इतना कह दीजिये कि यह केवल गुड़ नहीं खाये।''*

बापू ने पूरी बात सुनी, बच्चे की ओर देखा और कहा – ''एक सप्ताह बाद आना।''

एक सप्ताह बाद वह पिता अपने बालक को पुनः बापू के समक्ष उपस्थित हुआ और गांधी जी ने बालक के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा – ''बेटे! गुड़ मत खाया करो।''

बालक ने कहा – ''आज से मैं गुड़ नहीं खाऊंगा।''

बालक के पिता को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने कहा कि यही बात आप एक सप्ताह पहले भी तो कह सकते थे, तब गांधी जी ने कहा कि **मैं स्वयं भोजन के पश्चात गुड़ का सेवन करता हूं और इस पूरे एक सप्ताह गुड़ का सेवन नहीं कर के मैंने अनुभव किया है कि इसके खाने से और न खाने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। आज मैं इस बात का अधिकारी हूं कि इस बालक को गुड़ नहीं खाने की आज्ञा दे सकता हूं।**

बात साधारण होते हुए भी अत्यधिक गम्भीर है, अर्थात वही वचन सार्थक होते हैं, जो भीतर से उच्चरित हुए हों क्योंकि उसमें व्यक्ति के स्वयं का, मानस का चिन्तन होता है, परख होती है।

आजकल आम बोल-चाल की भाषा में – यार, साला, इत्यादि कई शब्द हैं जो अनायास मुख से निकल जाते हैं, जबकि इन शब्दों का विवेचन किया जाए तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। बेटा मां को और एक भाई बहन को बोलते हुए कहता है 'अरे यार, आज ऐसा हो गया, वैसा हो गया।' मां का 'मम्मी' हो गया और मम्मी का भी अपभ्रंश होकर 'मॉम' हो गया। 'पापा' का अपभ्रंश होकर 'पॉप' (Pop Music) या '**पाप**' हो गया। डैडी का अपभ्रंश 'डेड' (Dead) हो गया। अब जीती-जागती मां को मिश्र की '**ममी**' (मृत देह) बना दिया, अच्छे खासे पिता को डेड अर्थात मृत या पाप बना दिया, तो किस प्रकार से परिवार में माधुर्य और सामंजस्य रह सकता है। क्योंकि ये सार्थक शब्द ही नहीं हैं।

आज भी षोडश संस्कारों में जब बालक की जिह्वा पर ज्ञान दीक्षा की क्रिया सम्पन्न करते समय 'ॐ' लिखा जाता है, तो उसके पीछे यही अर्थ है कि यह जिह्वा कुण्डलिनी के प्रभाव को व्यक्त करे, अपने आप में सशक्त एवं प्रभावकारी हो। एक भिखारी घण्टों तक चिल्ला चिल्ला कर भीख मांगता है और दूसरी ओर भिक्षुक बनकर महात्मा बुद्ध जिस द्वार पर खड़े हो जाते थे, वह व्यक्ति अपने आप को धन्य समझने लगता था और अपना सब कुछ अर्पण कर देता था।

वाणी की देवी, त्रिशक्ति में प्रमुख सरस्वती को माना गया है। जिस व्यक्ति के जीवन में वाग्देवी सरस्वती विराजमान नहीं हैं, उसके जीवन में महालक्ष्मी और महाकाली भी स्थापित नहीं हो सकतीं, क्योंकि ***जहां ज्ञान है वहां धन और अभय दोनों आ ही जाते हैं।*** इसीलिये चाणक्य ने अपने नीति शतक में लिखा कि मुझसे सबकुछ छिन जाये तो भी मैं विचलित नहीं होऊंगा, परमात्मा से केवल एक ही प्रार्थना है कि मेरा ज्ञान और मेरी जिह्वा अक्षुण्ण रहे। ये दोनों मेरे साथ रहेंगे तो मैं पूरे विश्व को एक बार तो क्या हजार बार विजित कर सकता हूं।

शब्दों का सार्थक रूप है मंत्र जो पूर्ण ध्वनि से युक्त हो और वह ध्वनि जो अन्तर्मन से प्रवाहित हो और उसके साथ आपका ओज और तेज प्रगट हो, *ब्रह्म वर्चस्विता से युक्त ओज! प्रज्ञा रश्मियों से युक्त ओज!*

ओज एक ऐसा गुण होता है जिसके समक्ष चेतना की अन्य कोई भी अन्य भावभूमि लघु हो जाती है। ओज का प्रादुर्भाव केवल उसी व्यक्ति में सम्भव हो सकता है जिस व्यक्ति के जीवन में कुछ श्रेष्ठ मूल्य होते हैं और जिसे सम्पूर्ण आन्तरिकता व अंतरंगता से यह दृढ़ विश्वास होता है कि उसके प्रत्येक श्रेष्ठ कार्य में कोई परम सत्ता भी उसकी पग-पग पर सहायक है।

ओज तो साधक की एक आंतरिक स्थिति होती है, जिसे जीवन में साधित तो किया जा सकता है किन्तु इस हेतु मंत्र जप से भी अधिक जो बात महत्वपूर्ण होती है वह यह होती है कि साधक अपनी सम्पूर्ण मानसिकता को इस प्रकार का निर्मित करे कि उसे जीवन में ओजवान बनना है तो बनना है, जीवन के शेष कार्य बाद में होते रहेंगे या नहीं हुए तो नहीं हुए किन्तु ओज को प्राप्त करके ही रहना है-जिसे पूज्यपाद गुरुदेव ने ***शरीरं साधयति वा पातयति वा*** का संकल्प कहा है, कुछ वैसी ही मानसिकता निर्मित करनी पड़ती है।

जीवन में ऐसे शिव संकल्प को धारण कर पाना भी गुरु कृपा से सम्भव होता है। यह माह पूज्यपाद गुरुदेव का अवतरण माह होने के कारण स्वतः ही एक वरदायक माह है तथा गुरु के वर प्रदान करने के अनेक रूप होते हैं।

साधक व शिष्य अपने जीवन में शिव संकल्प से युक्त होते हुए उस वाक्-शक्ति को प्राप्त कर सकें जो वाक्-

शक्ति समाज में तो श्री-युक्त करने में सक्षम होती है साथ ही ब्रह्मवर्चस्विता से युक्त करने भी समर्थ होती है क्योंकि शब्द, वाक्, ओज, ब्रह्म-इनमें से कोई भी पृथक नहीं है। सब परस्पर संगुम्फित हैं और जो **'एक साधो सब सधे, सब साधो सब जाए'** – ऐसा कहा गया है उसके अनुसार श्रेयस्कर मार्ग यही है कि साधक वाक् की साधना को प्रथम चरण के रूप में सम्पन्न करे। इस अवसर पर एक ऐसी साधना की प्रस्तुति की जा रही है जो वाक् शक्ति को जाग्रत करने अर्थात् वाक् पटुता को सुपुष्ट करने की अनुभूत साधना रही है।

वाक् शक्ति साधना

इस साधना को सम्पन्न करने के इच्छुक साधक के पास **'स्वस्त्यै यंत्र'** (धारण करने योग्य) तथा **'स्फटिक की माला'** होनी आवश्यक है। यह चार दिवसीय साधना है जिसे **15.6.2000** अथवा किसी भी माह के शुक्ल पक्ष में पड़ने वाले **गुरुवार** को सम्पन्न किया जा सकता है। साधना में श्वेत वस्त्रों का प्रयोग करें तथा दिशा उत्तर रहे। यंत्र को जल से स्नान करा कर उस पर कुंकुम, अक्षत, पुष्प की पंखुड़ियां चढ़ाएं तथा निम्न मंत्र का एक ही बार में ग्यारह माला मंत्र जप करें –

मंत्र

॥ ऐं रूं स्वों ॥

Alem Room Svom

यह प्रातः काल पांच से छह बजे के मध्य में की जाने वाली साधना है। मंत्र-जप के पश्चात यंत्र को गले में धारण कर लें तथा आगे एक माह तक नित्य प्रातःकाल में स्नान के बाद एक घंटे तक शुद्धता के साथ धारण करें। एक माह के पश्चात यंत्र को किसी सरोवर या नदी में विसर्जित कर दें। **भौतिक अर्थों में यह वाणी के किसी दोष को परिष्कृत करने की श्रेष्ठ साधना भी है।**

साधना सामग्री पैकेट – 310/-

काल चक्र

समय का चक्र निरन्तर गतिशील है और यदि सूक्ष्मता से देखें, तो प्रत्येक क्षण का अपना अलग महत्व है। इस काल चक्र की गति के फलस्वरूप जीवन में कुछ ऐसे क्षण भी आते हैं, जिनमें कुछ विशेष साधनाओं को सम्पन्न करने पर सफलता की सम्भावना बढ़ जाती है। इस स्तम्भ के अंतर्गत ऐसे ही चार विशिष्ट साधना मुहूर्तों को प्रस्तुत किया जा रहा है, जिन में सम्बन्धित साधना सम्पन्न करने पर सफलता प्राप्त होती है।

1.5.2000 **वैशाख कृष्ण पक्ष की द्वादशी** के दिन सोम प्रदोष भी होने से वैशाख नक्षत्र में प्रातःकाल साधनात्मक दृष्टि से शुभ योग निर्मित हो रहा है। इस दिन प्रातः ५:४८ से ७:३० बजे तक **'बगलामुखी गुटिका'** (न्यौछावर:६०/-) के समक्ष निम्न मंत्र का बिना रुके जप करने से आप अपने शत्रुओं को तेजहीन एवं शक्तिहीन बना सकते हैं –

मंत्र

॥ ॐ ह्लीं बगलामुखी देव्यै ह्लीं फट् ॥

Om Hleem Baglaamukhee Devyei Hleem Phat

जप के पूर्व दांए हाथ में जल लेकर शत्रु का नाम लेकर संकल्प अवश्य बोलें। जप के बाद गुटिका को जल में प्रवाहित कर दें।

11.5.2000 **वैशाख शुक्ल की अष्टमी**, गुरुवार के दिन प्रातः आश्लेषा नक्षत्र में वृद्धि योग है। साधक यदि प्रातः ४:२४ से ६:२६ के मध्य **'गुरु गुटिका'** के समक्ष निम्न मंत्र का जप करे, तो उसे सभी प्रकार से अनुकूलता मिल सकती है –

मंत्र

॥ ॐ गुं गुरुत्वै नमः ॥

Om Gum Gurutvei Namah

17.5.2000 **वैशाख शुक्ल की चतुर्दशी** को प्रातः स्वाती नक्षत्र में वरीयान योग बन रहा है। ऐसे श्रेष्ठ समय में प्रातःकाल ७:३६ बजे से ९:०० बजे तक किसी भी कार्य विशेष में सफलता हेतु **'कार्य सिद्धि माला'** (न्यौछावर: १५०/-) से निम्न मंत्र का जप करने पर उस कार्य में सफलता प्राप्त होती है –

मंत्र

॥ ॐ श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं ॐ ॥

Om Shreem Shreem Hreem Hreem Shreem Shreem Om

बाद में माला को जल में प्रवाहित करें।

28.5.2000 **ज्येष्ठ कृष्ण** पक्ष की **नवमी** को पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र में प्रीति योग निर्मित हो रहा है। इस दिवस विशेष में यदि साधक प्रातः ५:१२ से ७:४८ तक **'लक्ष्मी माला'** (न्यौछावर : १८०/-) से निम्न मंत्र का जप करे, तो जीवन में आकस्मिक धन प्राप्ति का योग निर्मित होता है।

मंत्र

॥ ॐ ह्रीं धनदायै ह्रीं ॐ ॥

Om Hreem Dhanadaayei Hreem Om

दो माह बाद माला को जल में विसर्जित कर दें।

वसुधैव कुटुम्बकम – अर्थात भूमि के एक टुकड़े के ही नहीं, एक छोटे से क्षेत्र या भौगोलिक सीमा रेखाओं से विभाजित होकर जन्मे एक राष्ट्र भर के ही नहीं वरन समूची पृथ्वी के सभी मनुष्य – चाहे वे काले हों या गोरे, वे हिन्दी भाषी हों या अंग्रेजी भाषी, जर्मन हों या फ्रांसीसी, वे चीन के हों या अमरीका के, वे स्त्री हों या पुरुष, अमीर हों या गरीब, हिन्दु हों या मुस्लिम, ईसाई हों या पारसी, या फिर हों यहूदी – संसार के सभी छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, बच्चे-वृद्ध – सब मिलकर एक परिवार हैं, मानवता की सूक्ष्म डोरी से बंधा एक परिवार जिसका केवल एक और केवल एक ही पिता है, जिसे किसी ने खुदा कहा है, किसी ने भगवान, किसी ने कृष्ण, किसी ने राम, किसी ने ईसा, किसी ने अल्लाह, किसी ने जुरत्थष्ट्र कहा है। उस ईश्वर की ही सब सन्तान हैं, और विश्व बन्धुत्व – 'वसुधैव कुटुम्बकम' की यही भावना सदा से विराजमान रही है भारतीय ऋषियों के चिन्तन में, उनकी ज्ञान धारा में, वेदों में और उपनिषदों में।

भारत की मूल धारा अध्यात्म ही रही है। अध्यात्म के शिखर पर भारत आज से ही नहीं सदा से ही आरूढ़ रहा है, विश्व को अपने ज्ञान से आलोकित करता रहा है। जितने सन्त, जितने ऋषि-मुनि, जितने धर्म गुरु, जितने दिव्य पुरुष, जितने अवतार इस धरती पर उत्पन्न हुए, उतने किसी अन्य स्थान पर नहीं। इस कारण आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र में भारत सदा से ही विश्वगुरु रहा है। बौद्ध काल में जहां भगवान बुद्ध के भिक्षुओं ने विश्व भ्रमण कर उनके दिव्य ज्ञान से विश्व को आलोकित किया तो, एक शताब्दी पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने भी भौतिकता से आक्रान्त पाश्चात्य देशों में पुनः आध्यात्मिक ज्ञान की ज्योति जलाने के लिये विदेश भ्रमण किया। आज भी कई उच्चकोटि के सन्त और समुदाय इसी हेतु प्रयत्नशील हैं, तो इसके पीछे उनका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है, अपितु वही भावना है – वसुधैव कुटुम्बकम की, 'सर्वे जनाः सुखिनो भवन्तु' की जिससे विश्व के दूसरे कोने में बैठा हमारा ही एक अन्य भाई भी अपने अन्दर ज्ञान की ज्योति जलाकर सुखी रह सके, ज्ञान गंगा में भीगकर आनन्दमग्न हो सके।

मनुष्य जीवन और यह ब्रह्माण्ड ज्ञात अज्ञात रहस्यों से भरा हुआ है। ज्ञात रहस्यों को भी विस्तार से समझना और उनके मूल की खोज करना मनुष्य की प्रकृति रही है। वहीं अज्ञात रहस्यों के सम्बन्ध में अनन्त जिज्ञासाओं के कारण कई ऐसे रहस्य उजागर हुए हैं, जिनके बारे में कल्पना ही की जाती थी। सभ्यता के विकास के साथ यह क्रम निरन्तर चलता ही जा रहा है। आज मानव सभ्यता बड़े गर्व के साथ कह रही है कि हमने आदि युग से इक्कीसवीं शताब्दी तक ही यात्रा की है और पहिये के अविष्कार से कम्प्यूटर तक की यह यात्रा अवश्य ही एक महान यात्रा कही जा सकती है। इस पूरी यात्रा में बाह्य उपकरणों की ओर अधिक से अधिक ध्यान दिया गया तथा अपनी सुख सुविधा के लिये नये-नये उपकरण मनुष्य जुटाता रहा। इसी कड़ी में पत्थर के अस्त्रों से परमाणु अस्त्रों-शस्त्रों तक भी यात्रा सम्पन्न की।

आज इस उन्नति के सुप्रभाव और दुष्प्रभाव दोनों ही देखने को मिल रहे हैं, जहां तकनीकि क्रान्ति ने सम्पूर्ण विश्व को एक 'ग्लोबल विलेज' बना दिया है, वहीं असुरक्षा, भय, असन्तोष, निराशा, अविश्वास, अनिद्रा, व्यभिचार, युद्ध, इत्यादि में भी अभिवृद्धि ही हुई है। क्या सभ्यता की यह उन्नति वास्तव में ही उन्नति कही जा सकती है? इस विषय पर हमारे आर्य ऋषियों ने भी विचार किया था और उन्होंने जो मूल सिद्धान्त प्रतिपादित किया था, वह था –

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

यह सिद्धान्त कहां खो गया, सुख के इतने अधिक उपकरण हो जाने के बाद भी मनुष्य संतप्त, त्रस्त और दुःखी क्यों है? उसके जीवन में सुख और सन्तोष क्यों नहीं है, क्यों

नहीं मनुष्य अपने जीवन में परितृप्ति का अनुभव कर सके। विज्ञान हमारी वैदिक संस्कृति में मूल रूप से विद्यमान रहा है, इसीलिये **चरक** जैसे महान चिकित्सक, **सुश्रुत** जैसे महान शल्य चिकित्सक, **आर्यभट्ट** और **भास्कराचार्य** जैसे खगोलशास्त्री भी हुए हैं, जिन्होंने वैज्ञानिक सिद्धान्तों की स्थापना की। इन्हीं के साथ महान ज्ञानी ऋषि भी हुए हैं – अर्थात **शंकराचार्य, गौतम, विश्वामित्र, वशिष्ठ, अत्रि, कणाद, वेद व्यास** जिन्होंने जीवन के सिद्धान्तों की व्याख्या की।

उनके ज्ञान का मूल आधार मनुष्य ही था, कि किस प्रकार मानव अपने जीवन में जन्म से मृत्यु तक की यात्रा स्वस्थ शरीर, स्वस्थ चित्त के साथ कर सके। इसके लिये मंत्रों की रचना हुई। तंत्र विज्ञान अर्थात क्रिया विज्ञान का विकास किया गया और उसके लिये आवश्यक उपकरण, यंत्र, का निर्माण हुआ। ब्रह्माण्डीय शक्ति जिसे देव शक्ति माना, उसके और मनुष्य के बीच किस प्रकार से तारतम्य बैठ सके, उसी हेतु यह साधना विज्ञान विकसित किया गया।

ऋषियों का निश्चित सिद्धान्त था कि ब्रह्माण्डीय शक्ति अनंत है और इस अनन्त ऊर्जा भण्डार से मनुष्य निरन्तर शक्ति प्राप्त कर सकता है। उस शक्ति का अपनी शक्ति के साथ संयोजन कर, योग कर वह जीवन के दुःखों का निराकरण कर सकता है। देवी-देवता, सम्मोहन, आकर्षण, साधना विज्ञान, मंत्र अनुष्ठान, यज्ञ, मुद्राएं इसी सिद्धान्त का प्रकट स्वरूप हैं। ऋषियों की ही परम्परा में इस साधना ज्ञान का विकास इस युग में नवीन रूप से प्रातः स्मरणीय **परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी (सद्गुरुदेव डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली जी)** द्वारा किया गया।

और ज्ञान की दृष्टि में किसी प्रकार का भेद नहीं होता है, और विशेष कर तब जबकि यह ज्ञान उस ईश्वर से सम्बन्धित हो। तब तो यह ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के लिये समान रूप से उपलब्ध होना चाहिये, उसके लिये फिर देश, जाति, लिंग, धर्म या भाषा का बन्धन नहीं आना चाहिये – ईश्वर तो अपनी सभी संतानों के लिये समान है और एक है।

संन्यास जीवन में सद्गुरुदेव ने यह निर्णय लिया कि वैदिक संस्कृति का यह महान मंत्र-तंत्र-यंत्र का ज्ञान जन-जन में जाना ही चाहिये, जिससे प्रत्येक व्यक्ति स्वयं मंत्र एवं साधना के बल पर ईश्वरीय शक्ति का स्पर्श पा सके और अपने जीवन के कष्टों से मुक्ति प्राप्त कर सके, क्योंकि ज्ञान पर किसी एक समुदाय का, धर्म का या राष्ट्र का एकाधिकार नहीं होता।

यह विशिष्ट ज्ञान सभी के लिये समान रूप से सुलभ हो सके, इसी उद्देश्य से आज से बीस वर्ष पूर्व मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान मासिक पत्रिका प्रारम्भ की गई थी। इस यात्रा के प्रारम्भ में इस ज्ञान की आकांक्षा रखने वाले कुछ शिष्य ही साथ थे। धीरे धीरे यह कारवां बढ़ता गया और लाखों व्यक्तियों ने सद्गुरुदेव से दीक्षा प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य बनाया। इसी क्रम में सद्गुरुदेव ने पूरे भारत का भ्रमण कर हजारों स्थानों पर साधना शिविर आयोजित किये, जिससे मंत्र-तंत्र-यंत्र इत्यादि के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रामक धारणाएं तोड़ी जा सकें और साधक स्वयं प्रत्यक्ष साधना सम्पन्न कर सकें।

इसी के अगले क्रम में मार्च २००० से मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान का अंग्रेजी संस्करण भी प्रारम्भ किया गया है, जो कि हिन्दी पत्रिका का हूबहू अनुवाद (ट्रान्सलेशन) है। अंग्रेजी का संस्करण भारत एवं विदेश में रहने वाले उन हजारों लाखों शिष्यों साधकों की प्रार्थना पर प्रारम्भ किया गया है, जो संस्कृत एवं हिन्दी अच्छी तरह से नहीं पढ़ सकते हैं। ज्ञान का द्वार प्रत्येक जिज्ञासु के लिये खुलना चाहिये, इसमें भाषा या जाति का बंधन होना ही नहीं चाहिये। आप पत्रिका केवल पढ़ें ही नहीं अपितु इन पन्नों में दिया गया व्यावहारिक ज्ञान अपने जीवन में उतारें, तभी हमारा यह कार्य सार्थक हो सकेगा।

प्रत्येक साधना निःशुल्क

गुरुधाम दिल्ली

जिस भूमि पर सैकड़ों प्रयोग और असंख्य दीक्षाएं सम्पन्न हो चुकी हैं, उस सिद्ध चैतन्य दिव्य भूमि— पर ये दिव्य साधनात्मक प्रयोग

समस्त साधकों एवं शिष्यों के लिए यह योजना प्रारम्भ हुई है, इसके अन्तर्गत विशेष दिवसों पर दिल्ली 'सिद्धाश्रम' में पूज्य गुरुदेव के निर्देशन में ये साधनाएं पूर्ण विधि-विधान के साथ सम्पन्न कराई जाती हैं, जो कि उस दिन शाम 7 से 9 बजे के बीच सम्पन्न होती है और यदि श्रद्धा व विश्वास हो, तो उसी दिन से साधना सिद्धि का अनुभव भी होने लगता है।

साधना में भाग लेने वाले साधक को यंत्र, पूजन सामग्री आदि संस्था द्वारा निःशुल्क उपलब्ध होगी (धोती, दुपट्टा और पंचपात्र अपने साथ में लावें या न हों तो यहां से प्राप्त कर लें)।

नवरात्रि काल में दुर्लभ साधनायें

9.4.2000 रविवार — **महाषोडशी प्रयोग**

सौभाग्य के क्षण होते हैं उनके जो अपने गुरु के समक्ष उपस्थित होने का अवसर प्राप्त कर लेते हैं और विरले होते हैं वे शिष्य जो गुरुदेव से महाविद्या साधनाएं प्राप्त कर सकें। नवरात्रि का पुण्य अवसर भगवती लक्ष्मी के वरदायक प्रभाव से युक्त श्री पंचमी का अवसर तथा भगवती महालक्ष्मी के ही सर्वोत्कृष्ट रूप महाषोडशी की साधना प्राप्त होने के क्षण – निश्चय ही इतने संयोग एक साथ कम ही घटित होते हैं। निरन्तर धन प्राप्ति अथवा पूर्ण रूपेण कायाकल्प या फिर सम्मोहनकारी गुणों की प्राप्ति – ये तो कुछ एक पक्ष हैं इस साधना के, पूर्ण रूप में तो महाषोडशी का साधना क्रम सम्पन्न करना, भगवान श्रीकृष्ण की भांति षोडशकला युक्त होना है और यही सम्पन्न होगा इस दिवस के प्रयोग में।

इन तीनों दिवसों पर साधना में भाग लेने वाले साधकों के लिए निम्न नियम मान्य होंगे

1. आप अपने किन्हीं दो मित्रों अथवा स्वजनों को (जो पत्रिका के सदस्य नहीं हैं) मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान पत्रिका का वार्षिक सदस्य बनाकर दिल्ली गुरुधाम में सम्पन्न होने वाले किसी एक प्रयोग में भाग ले सकते हैं। पत्रिका की सदस्यता का एक वर्षीय शुल्क रु. 225/- है, परन्तु आपको मात्र रु. 438/- ही जमा कराने हैं। प्रयोग से सम्बन्धित विशेष मंत्र सिद्ध, प्राण-प्रतिष्ठित सामग्री (यंत्र, गुटिका आदि) आपको निःशुल्क प्रदान की जाएगी।
2. यदि आप पत्रिका सदस्य नहीं हैं, तो आप स्वयं तथा अपने किसी एक मित्र के लिए पत्रिका वार्षिक सदस्यता प्राप्त कर उपरोक्त किसी साधना में भाग ले सकते हैं।
3. पत्रिका सदस्य बनाकर आप किसी एक परिवार को ऋषि परम्परा की इस पावन साधनात्मक ज्ञान धारा से जोड़कर एक पुनीत एवं पुण्यदायी कार्य करते हैं। यदि आपके प्रयास से एक परिवार में अथवा कुछ प्राणियों में ईश्वरीय चिन्तन, साधनात्मक चिन्तन आ पाता है, तो यह आपके जीवन की सफलता का ही प्रतीक है। उपरोक्त प्रयोग तो सर्वथा निःशुल्क हैं और गुरु कृपा द्वारा ही वरदान स्वरूप साधक को प्राप्त होते हैं। प्रयोगों की न्यौछावर राशि को अर्थ के तराजू में नहीं तौल सकते।

फोटो द्वारा 'धूमावती दीक्षा' केवल ९ से ११ अप्रैल को ही

आप चाहें तो निर्धारित दिवसों से पूर्व ही अपना फोटो एवं न्यौछावर राशि का बैंक ड्राफ्ट ('मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान' के नाम से) भेजकर भी इन दिवसों पर होने वाली दीक्षा को प्राप्त कर सकते हैं। आपका फोटो एवं पांच सदस्यों के पते दिल्ली कार्यालय को समय पर प्राप्त हो सकें, इस हेतु आप अपना पत्र स्पीड-पोस्ट द्वारा ही भेजें। पत्र विलम्ब से मिलने पर दीक्षा सम्पन्न न हो सकेगी।

10.4.2000 सोमवार बगलामुखी महाविद्या प्रयोग

बगलामुखी साधना का शास्त्रों में ही नहीं इतिहास के पृष्ठों में भी वर्णन मिलता है। चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त, राज राजेन्द्र चोल ने अनेकों बार शत्रुओं पर अद्वितीय सफलता इसी साधना के माध्यम से पाई थी। जीवन में शान्ति सहज नहीं है, अनायास ही कई शत्रु उत्पन्न हो जाते हैं, जो जीवन में असन्तुलन पैदा कर देते हैं। शत्रुओं के ऐसे सभी प्रयास असफल हो सकें, शत्रु निस्तेज हो सकें, इसके लिये बगलामुखी साधना का सदा से प्रचलन रहा है। शत्रु कोई व्यक्ति ही नहीं, जीवन की कोई विकट स्थिति भी हो सकती है, जो आपके लिये शत्रु से कम नहीं है, जैसे – मुकदमे में सन्दिग्धता, अधिकारियों से अनबन, लोगों के उलाहने, समाज के कटाक्ष और कई आत्मगत न्यूनताएं। इन सबके ऊपर विजय भी बगलामुखी साधना से सम्भव है, और इस महाविद्या साधना का नवरात्रि काल में प्राप्त होना अपने आप में सौभाग्य है।

11.4.2000 मंगलवार भगवती दुर्गा वरदायक प्रयोग

११ अप्रैल दुर्गा अष्टमी और नवरात्रि की पूर्णाहुति का श्रेष्ठतम मुहूर्त है। यह ऐसा श्रेष्ठ क्षण होता है, जब पूरे नवरात्रि काल में की गई साधनाओं को साधक अपने इष्ट को समर्पित कर उनके जीवन में फलीभूत होने के लिये कामना करता है। इस तिथि के लिये तो यह भी कहा गया है, कि यदि कोई व्यक्ति पूरे नवरात्रि पर्यन्त भी कुछ न करे, और मात्र इस दिन ही भगवती दुर्गा की उपासना कर ले, तो उसे पूरी नवरात्रि भर की गई साधना जैसा ही फल मिलता है। इस दिवस पर भगवती दुर्गा अपने साधकों की कामनाओं को पूरा करने के लिये अपने वरदानों की झोली खोल देती है, प्राप्त करना न करना साधक की क्षमता है। इस श्रेष्ठ अवसर पर भगवती दुर्गा की साधना कर उनसे किसी एक वरदान को प्राप्त किया जा सकता है, अपनी किसी एक कामना की पूर्ति को पूर्ण करने के लिये यह प्रयोग किया जा सकता है।

गुरुधाम में दीक्षा व साधना का महत्व

शास्त्रों में वर्णन आता है, कि मन्दिर में मंत्र जप किया जाए तो अति उत्तम होता है, उससे भी अधिक पुण्यदायी होता है यदि नदी के किनारे करें, उससे भी अधिक समुद्र तट, और इससे भी अधिक पर्वत में करें तो, और पर्वत में भी यदि हिमालय में किया जाए, तो और भी कई गुना श्रेष्ठ होता है। इन सबसे भी श्रेष्ठ होता है यदि साधक गुरु चरणों में बैठकर साधना सम्पन्न करे। और यदि गुरुदेव अपने आश्रम अर्थात् गुरुधाम में ही वह साधना प्रदान करें, तो इससे बड़ा सौभाग्य और कुछ होता ही नहीं।

कुछ ऐसे स्थान होते हैं, जहां दिव्य शक्तियों का वास सदैव रहता ही है। जो सद्गुरु होते हैं, वे सूक्ष्म रूप से अथवा सशरीर प्रतिपल अपने धाम में उपस्थित रहते हुए प्रत्येक गतिविधि का सूक्ष्म रूप से संचालन करते ही रहते हैं। इसलिए यदि शिष्य गुरुधाम में पहुंच कर गुरु से साधना, मंत्र एवं दीक्षा प्राप्त करता है और गुरु चरणों का स्पर्श कर उनकी आज्ञा से साधना प्रारम्भ करता है, तो उसके सौभाग्य से देवगण भी ईर्ष्या करते हैं।

तीर्थ स्थल पुण्यप्रद हैं पर शिष्य अथवा साधक के लिए सभी तीर्थों से भी पावन तीर्थ गुरुधाम होता है। जिस धाम में सद्गुरुदेव का निवास स्थान रहा हो, ऐसे दिव्य स्थान पर गुरु चरणों में उपस्थित होकर गुरु मुख से मंत्र प्राप्त करने की इच्छा ही साधक में तब उत्पन्न होती है, जब उसके सत्कर्म जाग्रत होते हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए साधकों के लाभार्थ गुरुदेव की व्यस्तता के बावजूद भी दिल्ली गुरुधाम में तीन दिवसों को साधनात्मक प्रयोगों की श्रृंखला निर्धारित की गई है।

- दीक्षा आज के युग में एक प्रामाणिक उपाय है सफलता की ऊंचाइयों को प्राप्त कर लेने का, जीवन के अभाव को, अधूरेपन को दूर कर देने का, जीवन में अतुलनीय बल, साहस, पौरुष एवं शौर्य प्राप्त कर लेने का, साधना में सिद्धि प्राप्त कर लेने का...
- गुरु प्रदत्त शक्तिपात द्वारा शिष्य जिस कार्य हेतु वह दीक्षा प्राप्त करता है, उसमें निपुणता प्राप्त कर लेता है, क्योंकि वह सफलता और श्रेष्ठता प्राप्त करने का एक लघु उपाय है...
- दीक्षा में भाग लेने वाले सभी साधकों का जल से अमृत अभिषेक करने के उपरान्त विशेष शक्तिपात प्रदान किया जाएगा। यह दीक्षा इन तीनों दिवसों को सायं ७ बजे प्रदान की जाएगी। दीक्षा के उपरान्त एक उपयोगी मंत्र प्रदान किया जाएगा।

योजना केवल इन ३ दिनों के लिये
किन्हीं पांच व्यक्तियों
को वार्षिक सदस्य बनाकर
उनके शुल्क पते लिखवा कर
उपहार स्वरूप ये दीक्षा आप
निःशुल्क प्राप्त कर सकते हैं

225x5
Rs.1125/-

धूमावती दीक्षा प्राप्त होने से साधक का शरीर मजबूत व सुदृढ़ हो जाता है। आए दिन और नित्य प्रति ही यदि कोई रोग लगा रहता हो, या शारीरिक अस्वस्थता निरन्तर बनी ही रहती हो, तो वह भी दूर होने लग जाता है। उसकी आंखों में प्रबल तेज व्याप्त हो जाता है, जिससे शत्रु अपने आप ही परास्त रहते हैं। इस दीक्षा के प्रभाव से यदि किसी प्रकार की तंत्र बाधा या प्रेत बाधा आदि हो, तो वह भी क्षीण हो जाता है। इस दीक्षा को प्राप्त करने के बाद मन में अद्भुत साहस का संचार हो जाता है, और फिर किसी भी स्थिति में व्यक्ति भयभीत नहीं होता है। तंत्र की कई उच्चतर क्रियाओं का रहस्य इस दीक्षा के बाद ही साधक के समक्ष खुलता है।

सम्पर्क : सिद्धाश्रम, 306, कोहाट एन्क्लेव, पीतमपुरा, नई दिल्ली – 34, फोन : 011–7182248, टेली फैक्स : 011–7196700

रिपोर्ताज

"नित पूजत प्रभु पांवरी प्रीति न हृदय समाति"

अविरल यात्रा जारी है

पूज्य गुरुदेव श्री कैलाशचन्द्र श्रीमाली जी

26–27 फरवरी 2000, दुर्गा साधना शिविर, दुर्ग्याना मन्दिर, अमृतसर

अमृतसर पवित्र और धार्मिक नगरी है। इस नगरी की पवित्रता आज भी उतनी ही अक्षुण्ण है, जितनी पांच सौ साल पहले रही होगी। जहां दुर्ग्याना तीर्थ और स्वर्ण मन्दिर हिन्दू और सिखों के भाई-चारे के साक्षी हैं। जहां शौर्य और शान्ति साथ-साथ रहती है, उसी का पावन नाम पंजाब है, जहां की माताएं पुत्र के पैदा होते ही अपने दूध के साथ शौर्य और वीरता की घूंटी तो पिलाती ही हैं, धार्मिकता और कर्मठता का भी पुट साथ-साथ देती हैं।

२६ फरवरी को आठ बजे **पूज्य गुरुदेव श्री कैलाश चन्द्र श्रीमाली** जी दुर्ग्याना मन्दिर के प्रांगण में पधारे, मन्दिर कमेटी के सभी सदस्यों ने पूज्य गुरुदेव का पुष्पाहारों से स्वागत किया। इसके बाद पूज्य गुरुदेव देवताओं के दर्शन के लिये मन्दिर में गये। वहां पुजारियों ने उनका स्वागत किया।

मन्दिर के प्रांगण में वेद भवन है, जहां शिविर का आयोजन था। साधकों ने जयघोष के साथ पूज्य गुरुदेव का स्वागत किया और मन्दिर में इस आयोजन के निमित्त पधारने के लिये अपनी कृतज्ञता प्रगट की। पवित्र वेद मंत्रों की मंगल ध्वनि के साथ गुरुदेव का मंच पर पदार्पण हुआ। नगर आर.एस.एस. प्रमुख **श्री राम प्रकाश चोपड़ा** को आशीर्वाद प्रदान करते हुए **पूज्य गुरुदेव श्री कैलाश चन्द्र श्रीमाली** जी ने गुरु चादर एवं गुरु चित्र प्रदान किये।

सिद्धाश्रम साधक परिवार की ओर से अमृतसर एवं पट्टी क्षेत्र के **श्री के.एल.शर्मा, बॉबी चौहान, विजय शर्मा, दिनेश डोगरा** और सभी कर्मठ कार्यकर्ताओं ने पुष्प हारों से पूज्य गुरुदेव का स्वागत किया। पूज्य सद्गुरुदेव का विशेष मंत्रों से पूजन एवं आवाहन सम्पन्न हुआ।

पूज्य गुरुदेव **श्री कैलाशचन्द्र श्रीमाली** जी ने अपने प्रवचन में कहा – "परतंत्रता की बेड़ियों से इस देश को छुटकारा दिलाने का श्रेय इसी भूमि के शहीदों को है। जब जब भी विपत्ति काल आया है, तब इसी भूमि के सपूतों के कारण यह देश गौरवान्वित हुआ है। ***शहीद और साधक में कोई भेद नहीं होता, दोनों का एक ही कर्तव्य होता है – बलिदान! एक देश के लिये करता है तो दूसरा गुरु के लिये।*** उन्हीं वीर सपूतों को जन्म देने वाली पवित्र धरती का नाम पंजाब है, आज भी जहां धर्म के प्रति अटूट आस्था कायम है। उन माता-पिता को मैं आशीर्वाद देता हूं, जिन्होंने ऐसे वीरों को जन्म दिया। हे पंजाब के वीरों, तुम देश की आन और शान हो, महान हो।"

दूसरे दिन के प्रथम सत्र में 'पंजाब केसरी' अखबार के मुख्य सम्पादक **श्री विजय चोपड़ा** ने पूज्य गुरुदेव का मंच पर पुष्पाहारों से स्वागत किया। पूज्य गुरुदेव ने तिलक कर उन्हें चादर प्रदान कर आशीर्वाद दिया कि अपने नाम के अनुरूप ही वे निरन्तर विजय प्राप्त करते हुए देश की सुरक्षा में सहयोग देते रहें।

पूज्य गुरुदेव ने पंजाब की परम्परा का आवाहन करते हुए कहा – "*गुरुओं के प्रति श्रद्धा और निष्ठा की मिसाल सिक्खों ने और भी सुदृढ़ की है, यह उन्हीं गुरुओं की देन है कि शौर्य और शान्ति इस धरती पर साथ-साथ रहती है।*

अन्तिम सत्र में गुरु दीक्षा, तंत्र बाधा निवारण दीक्षा, त्रिशक्ति दीक्षा, के साथ पूज्य गुरुदेव ने भगवती दुर्गा साधना सम्पन्न कराई और साधकों को सुखी जीवन प्राप्ति का आशीर्वाद प्रदान किया।

पूज्य गुरुदेव श्री नन्द किशोर श्रीमाली जी

3-4 मार्च 2000, महाशिवरात्रि शिविर, कोरबा, (म.प्र.)

भारत में जितने प्रकार के पूजा, पर्व, व्रत, उपवास प्रचलित हैं – उनमें महाशिवरात्रि महोत्सव के समान उत्सव या पर्व में देखने में नहीं आता। बहुत से लोग पूजा अर्चना न करके उपवास मात्र भी करते हैं, रात्रि जागरण करते हैं। समस्त हिन्दू समाज – सौर, गाणपत्य, शैव, वैष्णव और शाक्त – इन पांच सम्प्रदायों में विभक्त है। शिवरात्रि एक ऐसा उत्सव है, जिसे सभी सम्प्रदाय बिना भेदभाव के मनाते हैं तथा इसके फलस्वरूप भोग और मोक्ष प्राप्त करते हैं। फाल्गुन मास की त्रयोदशी तिथि को माध्यम बनाकर जिस अन्धकारमयी रात्रि का उदय हुआ, उसी को शिवरात्रि कहते हैं।

कोरबा ऊर्जा नगरी मानी जाती है, यहां के सात थर्मल प्लांट मध्य प्रदेश और बिहार राज्य की विद्युत आपूर्ति करते हैं। कोरबा के आस-पास का क्षेत्र कोयले की खानों से भरा है। यह आदिवासी क्षेत्र है, जंगलों की छटा दर्शनीय और सुहावनी है। २ मार्च को इस नगरी में **पूज्य गुरुदेव श्री नन्दकिशोर श्रीमाली जी** तथा **पूज्य गुरुदेव श्री कैलाशचन्द्र श्रीमाली जी** के आगमन पर साधकों द्वारा शोभायात्रा निकाली गई। सुसज्जित रथ पर बैठे हुए दोनों गुरुदेव श्वेत वस्त्रों में राजहंसों के समान शोभित हो रहे थे। यहां का प्रसिद्ध **'कर्मा नृत्य'** (आदिवासी महिला द्वारा १०८ कलश लेकर किया गया नृत्य) आकर्षण का केन्द्र था। ३ मार्च को प्रातः शास्त्रोक्त विधि से श्री शास्त्री जी द्वारा सम्पन्न कराया गया गुरु पूजन एवं गणपति पूजन भावपूर्ण सम्पन्न हुआ, साधकों के नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। पूज्य गुरुदेव के मंचासीन होने पर आयोजकों ने पुष्पहारों से स्वागत किया।

पूज्य गुरुदेव श्री नन्दकिशोर श्रीमाली जी ने अपने प्रथम प्रवचन में कहा – "सभी साधकों को आशीर्वाद के साथ धन्यवाद भी देता हूं, जो इस साधना शिविर में भाग लेने के लिये यहां एकत्र हुए हैं। यह छत्तीसगढ़ का स्नेह, प्यार और निश्छलता है, जिसने एक वर्ष में ही तीन बार यहां आने के लिये मुझे मजबूर किया है। आज, यदि हम अपने जीवन को देखें, तो इसमें झगड़ा, लड़ाई, प्यार आदि कई चीजें हैं। कुछ लोग कहते हैं, जीवन अनंत की यात्रा है, कुछ का विचार है, कि जीवन एक अद्‌भुत संग्राम है जहां संघर्ष ही संघर्ष है।

सुसंगति से ही जीवन में परिवर्तन आता है। भौतिक उन्नति के लिये कोरबा के थर्मल पॉवर तो हैं ही, किन्तु अपने अन्दर की ऊर्जा को कैसे जाग्रत करेंगे? ***जीवन को आनन्द से जीने की कला सीखनी होगी। जीवन में धन, धान्य, यश, प्रतिष्ठा और आनन्द तभी आ सकता है जब जीवन में प्रेम हो और प्रेम झलकना चाहिये। यदि आपका काम रुका है, नहीं बन रहा है, तो समझिये आपमें संकल्प शक्ति का अभाव है।*** 'शिव संकल्पमस्तु' – हे भगवान हम संकल्पवान बनें। ***यदि आप साधक या शिष्य हैं, तो आप में ललक होनी चाहिये। शिव संकल्प के माध्यम से लक्ष्मी को स्थायित्व दिया जा सकता है। परन्तु संशय से दूर रहिये, संशयशील व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता।*** " इसके बाद उन्होंने **'शिव संकल्प शक्ति दीक्षा'** एवं **'विष्णु वश्य महालक्ष्मी दीक्षा'** प्रदान करके साधकों को चेतनावान और ऊर्जावान बनाने की क्रिया की।

पूज्य गुरुदेव श्री कैलाशचन्द्र श्रीमाली जी ने अपने प्रवचन में कहा – "मुझे कोरबा में आकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। जिन साधकों और शिष्यों ने इस साधना शिविर को सफल बनाने के लिये अथक प्रयास किया है, उन्हें मेरा विशेष रूप से आशीर्वाद है। ***शिष्य की प्रसन्नता ही गुरु की प्रसन्नता होती है, क्योंकि गुरु का अवतरण ही शिष्यों के कल्याण के लिये होता है। आप के सौभाग्य की मैं भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूं। गुरु तो आपके सामने उपस्थित हैं, अब आप इस वातावरण का लाभ कैसे उठाते हैं, यह आप पर निर्भर करता है।*** लेकिन गुरु को समझ पाना साधारण क्रिया नहीं है। यह सब कुछ गुरु कृपा पर आधारित है, कि वे आपको क्या बनाना चाहते हैं। आप लोगों को जो भी कष्ट और वेदना है, गुरु सबसे परिचित हैं। इस समय आधा छत्तीसगढ़ गरीबी रेखा से नीचे का जीवन

यापन कर रहा है। आजादी के पचास वर्षों के बाद भी इस देश की आर्थिक हालत दर्दनाक है, ऐसा क्यों है?

जब जीवन में उन्नति के रास्ते अवरुद्ध हो जाते हैं, उस समय गुरु का शरणागत होना चाहिये। *जब सौभाग्य का सूर्य डूबने लगता है, तब गुरु को ही आशा की किरण कहा गया है। संसार में किसी भी वस्तु को ईश्वर ने व्यर्थ नहीं बनाया है, फिर आप तो मनुष्य है, आपकी महत्ता संसार में अवश्य है, सिर्फ आप उसे पहिचानें।* मुझे सबसे बड़ी खुशी तब होगी जिस दिन आपके जीवन में वह क्षण आयेगा जब आप और सफल होकर गुरु कार्य कर सकेंगे।''

दो दिन का यह भव्य शिविर कोरबा के लिये ही नहीं, अपितु पूरे छत्तीसगढ़ के लिये अद्भुत आनन्द पर्व था। इस महान आयोजन में श्री आर.सी.सिंह के संयोजन में **श्री अखिल सिंह बैस, श्री आर.के.सोनी, श्री एस.के.नेवार, एन.के.मौर्य, बी.के.झा, बी.के.गर्ग, आलोक बाजपेय, दिलीप वड़ोदकर, भानु पाण्डेय, डी.आर.मनहर, सन्तोष सोनी (चांपा), सुदामा चन्द्रा, जगदीश साहू,** डी.एस.साहू – इन सभी निष्ठावान सदस्यों ने पिछले छः महिने जो चेतना जाग्रत की, उसी का सुफल था कि महाशिवरात्रि की रात्रि को हजारों साधकों ने एकत्र होकर पारदेश्वर शिवलिंग पर अभिषेक किया। निश्चिंत भाव से उत्साह के साथ कार्यक्रम रात्रि ३:०० बजे तक चलता रहा। गुरुदेव ने आशीर्वाद प्रदान करते हुए सन्देश दिया – ''आप जाज्वल्यमान बनें, आपके नाम से सद्गुरुदेव का नाम स्वतः ही जाज्वल्यमान बनेगा। इसी आशीर्वाद के साथ पूर्णाहुति कर रहा हूं।''

वन्दनीय माता जी

18-19 मार्च 2000, होली शिविर, गुरुधाम, जोधपुर

होली का नाम सुनते ही शरीर में गुदगुदी के साथ खुशी की लहर बहने लगती है। बासन्ती रंग में रंगने की ललक के साथ सातों रंगों का इन्द्रधनुषी आकार साकार हो जाता है। हंसी, खुशी, उमंग और मस्ती का नाम ही होली है। होली का वातावरण ही अजीब सा होता है, जहां छोटे-बड़े, अमीर-गरीब और अपने-पराये का सभी भेद मिट जाता है। एक दूसरे के गले मिलने के बहाने प्रेम और प्यार को एक दूसरे पर उड़ेल देने का सुअवसर ही होली है।

गुरु दरबार, जोधपुर में साधक टोली बनाकर झुण्ड के झुण्ड चले आ रहे थे। देश के कोने-कोने से सबकी एक ही धुन, एक ही लक्ष्य था, दीवाने बने सभी चले आ रहे थे, गुरुदेव के साथ रंग खेलने के लिये, निखिल रंग में रंगने के लिये, रंगों में सराबोर होने के लिये। संसार के सभी रंग फीके होते हैं, धुल जाते हैं, उतर जाते हैं, केवल गुरु का ही रंग ऐसा होता है जिसमें एक बार रंग जाने पर और निखार आता जाता है। साधक अपने सगे-सम्बन्धी तथा भाई-बन्धुओं के मोह बन्धन को छोड़ चले आ रहे थे। गुरु से एकाकार होने के लिये पुराने व नये, सभी साधक आपस में गले मिल रहे थे, नाच-गा रहे थे और अतीत की बातों में खोये, मस्ती में झूम रहे थे।

१८.३.२००० को ११.०० बजे गुरु पूजन के साथ शिविर का उद्घाटन हुआ। मंच पर गुरु त्रिमूर्ति आसीन हुए, गुरु आवाहन के साथ ही आनन्द और मस्ती की लहर पूरे पण्डाल में छा गई। जयप्रकाश की भजन वर्षा में सभी साधक भीग रहे थे और 'पूज्य गुरुदेव की जय' के जयघोष के साथ हवा में उछल रहे थे। अब धीरे-धीरे होली का रंग साधकों पर छा रहा था। **पूज्य गुरुदेव श्री नन्दकिशोर श्रीमाली** जी ने अपने प्रथम प्रवचन में साधकों को गुरुगृह में पधारने पर आशीर्वाद देते हुए जीवन में सदैव प्रसन्न रहने तथा सुखमय बने रहने की शुभाशंसा प्रकट की। उन्होंने कहा – ''कृष्ण गौओं को चराते थे, आप सभी निखिल रूपी कृष्ण की गउए हैं।''

भगवत् पूज्यपाद सद्गुरुदेव निखिल के इन शब्दों का स्मरण दिलाते हुए पूज्य गुरुदेव श्री नन्दकिशोर जी ने कहा – ''तुम अर्जुन हो, अर्जुन का काम निरन्तर संघर्ष करना है। *जब भी कभी तुम चिन्ताग्रस्त होते हो, तब मुझे आश्चर्य होता है। तुम्हें चिन्तित होने का कोई कारण ही नहीं, कृष्ण निरन्तर तुम्हारे साथ हैं और तुम्हारी हार नहीं है, विजयश्री हर हालत में तुम्हें प्राप्त होगी ही, फिर डर किस बात का है।* जब-जब कृष्ण नाम लिया जायेगा, गोपियों का और ग्वाल-बालों का तथा अन्य संगी-साथियों का नाम आयेगा ही। यह साधना शिविर नहीं है, यह उल्लास और आनन्द का शिविर है। चिन्ता की कोई बात ही नहीं, हर युग में रावण होगा

तो राम को आना ही पड़ेगा। कंस होगा तो उसको मारने के लिये कृष्ण आयेंगे ही। इसी तरह नव-नव शिष्यों की श्रद्धा संचित होगी, तो निखिल को आना ही होगा। आप गुरु निखिल से अलग कैसे हो सकते हैं? *पचीस जन्मों से आपकी रगों में निखिल का खून बह रहा है, आप सभी तांत्रिक हैं, अपनी शक्ति को पहिचान नहीं पा रहे हैं, आपका संकल्प दृढ़ होना चाहिये, आप शिव के गण हैं, भैरव-भैरवी हैं। आप कर्मठ बनें, भाग्य के भरोसे मत बैठे रहें। जिस दिन आप अपने को पहिचान लेंगे, उसी दिन आपकी साधना सफल हो जायेगी। ऋषियों के रचे मंत्र झूठे नहीं हो सकते। जब मंत्र झूठे नहीं हैं, फिर साधना ठीक से करें। सेवा के माध्यम से गुरु के प्रति विश्वास दृढ़ करें।*

इसके बाद उन्होंने साधकों को होली के इस पावन क्षण में **भाग्योदय दीक्षा** एवं **अनंग दीक्षा** प्रदान की।

पूज्य गुरुदेव श्री कैलाश चन्द्र श्रीमाली जी ने अपने शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहा – "मानव जीवन का कुछ उद्देश्य है, इसे प्राप्त करने के लिये देवता भी तरसते हैं। ऐसे मानव जीवन को प्राप्त करने के बाद भी यदि आप कष्टों से जूझते रहें, दरिद्रता को अपने ऊपर लादे हुए पीढ़ी दर पीढ़ी भटकते रहें, तो इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या होगा? इस नारकीय जीवन से त्राण पाने के लिये कुछ तो उपाय करना पड़ेगा। शत्रुओं से आप घिरे हैं, त्रस्त होकर सिर झुकाये बैठे हैं, फिर तो शत्रु आप पर हावी होंगे ही। क्यों न आप अपनी शक्ति का प्रयोग करें? भगवत्‌ पूज्यपाद सद्‌गुरुदेव ने आपको बगलामुखी दीक्षा इसलिये नहीं दी थी, कि शत्रुओं से मार खाते रहें, यह तो बुजदिली है। यह तो गुरु के दिये ज्ञान का अपमान है! इस तंत्र दिवस पर पुनः **बगलामुखी दीक्षा** प्रदान कर रहा हूं।"

पूज्य गुरुदेव श्री अरविन्द श्रीमाली जी

पूज्य गुरुदेव श्री अरविन्द श्रीमाली जी ने भी भावपूर्ण आशीर्वादात्मक प्रवचन देते हुए कहा – "जीवन की सार्थकता गुरु चरणों में बैठना है, आपको यह सौभाग्य स्वतः ही प्राप्त है, आप पुण्यशाली हैं, इस पुण्यकाल में पूरे गुरु परिवार की ओर से आपको आशीर्वाद है, आप जीवन में सफल हों।"

पूज्यनीया माता जी ने भी सबको आशीर्वाद दिया कि जीवन में सफलता प्राप्त करें। आरती और चरण स्पर्श के बाद मध्य रात्रि में होलिका दहन का कार्य सम्पन्न हुआ। अगले दिन गुरु परिवार के साथ सभी साधकों ने होली खेली। फिर गुरु प्रसाद ग्रहण करके पारिवारिक कर्तव्य पूर्ति के लिये साधकों ने अपने गन्तव्य की ओर उल्लास के साथ प्रस्थान किया।

गुरु और शिष्य

*गुरु का कार्य शिष्य को आत्मकल्याण के लिये मार्गदर्शन देना है, किन्तु **गुरु के लिये सबसे बड़ी त्रासदी यही रहती है, कि उन्हें सुपात्र शिष्य सहज प्राप्त नहीं होता।** ऐसे सुपात्र की आवश्यकता निरन्तर बनी रहती है, जहां वे अपने ज्ञान को स्थापित कर सकें। गुरु एक शक्ति विशेष का नाम है जिसे एहसास किया जा सकता है, देखा जा सकता है, छुआ जा सकता है। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध अटूट और गहरा होता है। क्योंकि इसमें कोई स्वार्थ नहीं होता। जहां स्वार्थ होता है, वहीं दुःख होता है। गुरु सबके लिये मंगल कामना ही करते हैं, उनकी नजरों में छोटे-बड़े, गरीब-अमीर का भेद नहीं होता। **वे निरन्तर इसी चिन्तन में रहते हैं कि अपना यह ज्ञान तथा तपस्या कहां स्थापित करूं जिससे लोक कल्याण हो सके। दीक्षा का अर्थ है गुरु और शिष्य में एग्रीमेण्ट, समझौता।** गुरु शिष्य के भीतर जो पाप है, उसे समाप्त कर देता है, यही दीक्षा है, यही शक्तिपात है। सूर्य सभी को समान रूप से प्रकाश प्रदान करता है। यदि देखने वाला ही अपनी आंख बन्द कर ले तो सूर्य का इसमें क्या दोष? गुरु सतत प्रयासरत है कि शिष्य का कल्याण कैसे हो, परन्तु उनके ज्ञान और चेतना को प्राप्त करने के लिये पात्रता तथा दक्षता तो प्रमाणित करनी ही पड़ेगी।*

–पूज्य गुरुदेव श्री नन्दकिशोर श्रीमाली जी, २० फरवरी २०००, बैंगलोर शिविर के प्रवचनांश

साधना शिविर एवं दीक्षा समारोह

* 5-6 अप्रैल : राउरकेला
* 7 अप्रैल : सुंदरगढ़
* 8 अप्रैल : सम्बलपुर
* 9 अप्रैल : ढेंकानाल
* 10 अप्रैल : बेरहामपुर
* 11 अप्रैल : कटक

* विवरण मार्च अंक में देखें, फोन:0791–432209, 011–7182248

19-20-21 अप्रैल 2000 — **इन्दौर**

निखिल जयंती जन्मोत्सव समारोह

स्थल – **अभिनव कला समाज ग्राउण्ड, (महात्मा गांधी हॉल), महात्मा गांधी मार्ग, घण्टाघर**

• श्री जगदीश सिंह लाल, इन्दौर 0731–548617 • श्री विजय गुप्ता 0731–412400 • श्री विष्णु पाटीदार, 9826016483 • श्री ब्रजमोहन शर्मा 557203 • श्री रघुराज सिंह मेडन्दले • श्री राजाराम वर्मा 385906 • श्री शशि चौहान 573606 • श्री अशोक प्रजापति, 0731–593955 • श्री बद्री लाल माली 0731–8334449 • श्रीमति गिरी बाला, बलाड, 0731–797367 • श्री भुवनेश शर्मा, उज्जैन • श्री पूर्णेश चौबे, कुक्षी 07290–23310 • श्री अरुण भोरानिया, सनावद 07286–34354 • श्री बी.एम.त्यागी • श्री ब्रजमोहन चौहान, पेटलावद • श्रीमति शकुन्तला सोनी, महेश्वर 07283–42016 • श्री ओमप्रकाश सोनी, 07283–73298 • श्री दीनू यादव, सनावद 07286–35033 • श्री डी.आर. लोखण्डे, देवास 07272–29033 • श्री आर.सी.सक्सेना 07272–20623 • श्री सुधीर बाघेला, राजगढ़ • श्री ब्रजमोहन चौहान, पेटलावद • श्री शंकर साहूकार, धार07292–34035 • श्री बी.एम. त्यागी, सनावद 07286–34359 • श्री नवीन जोशीला, खरगोन 07282–65555 • श्री घनश्याम मालवीय, करही 07283–54395 • श्री रामेश्वर मिश्रा, बरोठा 07272–48249 • श्री कृष्ण सिंह परिहार, पण्डेरा, महेश्वर

30 अप्रैल 2000 — **सुन्दरनगर**

शिव महाकाली साधना शिविर

स्थल- **कम्युनिटि हॉल, जवाहर पार्क, सुन्दरनगर (मण्डी)**

• श्री गोहिन्द गुप्ता, कनैड 42420 • श्री शैलेन्द्र कुमार, बिलासपुर 44500 • श्री छविन्द्र शर्मा, सुन्दरनगर • श्री यशवन्त ठाकुर, 42722 • श्री जगदेव ठाकुर, घणोटू 77441 • श्री बसी राम ठाकुर • श्री कमलेश शर्मा 64714

7 मई 2000 — **पुणे (महा.)**

अष्ट विनायक साधना शिविर

• श्री वसंत पाटिल, पूना 0212–359047 • श्री रमेश पाटिल, नवसारी, 02637–53188, 56980

10 मई 2000 — **आगरा (उ.प्र.)**

स्थल- **एम.डी.जैन इण्टर कॉलेज, हरिपर्वत, आगरा**

• श्री संजय व जया शर्मा 0562–358381 • श्री जवाहर लाल गोयल 0562–250578 • श्री सीताराम बाबाजी 0562–381475 • श्री सुभाष शर्मा, कोटा, 0744–461739

13-14 मई 2000 — **रायबरेली**

दुर्गा काली हनुमान साधना शिविर

स्थल- **आई.टी.आई. सामुदायिक केंद्र, सेक्टर-2, दूरभाष नगर**

• श्री एस.के.मिश्र, इलाहाबाद 0532–501551 • श्री वसंत श्रीवास्तव, लखनऊ 0522–397630 • श्री वेदप्रकाश जायसवाल, वाराणसी • श्री एन.सी.सिंह, रायबरेली 0535–205985 • श्री राम चंद्र नील, रायबरेली • डॉ. जगत नारायण श्रीवास्तव • श्री जगदम्बा सिंह, 0535–205330 • श्री जी.एस.मिश्र 0535–202327 • श्री रामकुमार सोनी • श्री विजय श्रीवास्तव

21-22 मई 2000 — **बैतूल**

शिव शक्ति महालक्ष्मी साधना शिविर

न्यू बैतूल हायर सेकण्ड्री स्कूल ग्राउण्ड, कोठी बाजार थाने के पास

• श्री प्रशान्त गर्ग 07141–22436 • आर.सी.मिश्रा 30285 • महेन्द्र सोनी 32067 • मनोज अग्रवाल 33435 • एस.आर.उइके • पप्पू साहू • मिलाप सिंह वटके • धन्नू सिंह धुर्वे • विक्रमसिंह कुमरे • कमलाकर धाडसे • अमित जितपदे 86453 • एन.के.श्रीवास्तव 07147–24686 • शंकरराव मालवीय • राजेश कु. बट्टी • नरेन्द्र मैहतो, 07146–78814 • सम्पत सायले 07146–77090 • एस.एल.धुर्वे • श्री अमरसा इरपाचे • गोपाल पवार • आई.डी. कुमरे • विजय सीते 24861 • एस.के.सोनी • आई.एस. राणा 0755–783931 • आर.डी.मरकाम, • शंभूदयाल वरकडे • मधुसूदन वडोकर, • जगकलाल मवासे, 32634 • फूलसिंह परते • विजय साहू, बैतूल 32634

3-4 जून 2000 — **शिमला**

भुवनेश्वरी लक्ष्मी शक्ति साधना शिविर

• श्री पवन कुमार 0177–270442 • श्री नरेश कुमार 0177–225557 • श्री किशोरी पण्डित 0177–201966 • श्रीमती शारदा गुलेरिया 0177–235735 • श्री एम. आर. वशिष्ठ 01905–82221 • श्री एस.आर.ठाकुर 01902–52201 • श्री के.डी.शर्मा 01905–22073

11 जून 2000 — **सातारा (महाराष्ट्र)**

शिव गणेश पूर्णत्व सिद्धि साधना शिविर

स्थल- **गजानन मंगल कार्यालय, शनिवार पेठ, फुटका तलैया के पास, सातारा**

• श्री हरिश्चन्द्र कदम, मेढा 02378–85511 • श्री अनिल खटावकर 02378–85208 • श्री शिवाजी शिंदे, 02378–85212 • श्री दादोस्तो निकम, सातारा 02162–52454 • श्री वसन्त पाटिल, पुणे 020–5676483 • श्री अनिल सुपेकर, पुणे 7453968 • डॉ. एच. वाई. मुल्ला, कराड, 02164–41084 • श्री एकनाथ कदम, पंचगनी 02168–41055 • श्री रामचन्द्र बैस • जयश्री नारायण दले, बडूज 02161–31335

जी में आता है तुझको पुकारा करूं रहगुजर रहगुजर आस्तां आस्तां

या रोये या रुलाया अपनी तो यूं ही गुज़री
क्या ज़िक्र हम सफ़ीरां[1] यारान-ए-शादमां[2] का

धीरे-धीरे करके देखते ही देखते गुज़र गये तक़रीबन दो साल उस पुरअज़ीज़[3] शख़्सियत[4] के बिना, कहते थे जिसके बिना हम रह न सकेंगे।

हमें ज़िन्दगी की राह बताकर वह पोशीदा[6] हो गया किताबों के सतरों के बीच में कहीं या कि अब्र[7] की मानिंद उमड़-घुमड़ कर चला गया इस कायनात[8] के कहीं दूसरी ओर . . .

हमें जिस जाये कल गश आ गया था
वहीं शायद कि उस आस्तां[9] है

कभी यूं लगता है कि वह कहीं तो नहीं गया है, है तो यहीं कहीं, अभी तो गुजरा था इधर से एक मदमस्त हवा का झोंका बनकर, अभी तो कह रहा था कुछ गुनगुनाता हुआ, ज्यों गुनगुना जाती हो आषाढ़ की पहली रिमझिम फुहार।

कभी तो यूं होशमंदी कि चप्पे-चप्पे पर अक्स[10] दिखाई दे उसका तो कभी यूं बेखुदी[11] कि पहरों-पहर होश न रह जाये खुद का ही . . .

रात मजलिस[12] में तिरी हम भी खड़े थे चुपके
जैसे तस्वीर लगा दे कोई दीवार के साथ

मेरा वजूद[13] तो एक तस्वीर के मानिंद हो चला है फिर भी कहते हैं कि यह तस्वीर भी उसी की बनाई है। यकीनन कौन होगा उस जैसा मुसव्वर[14] जो एक ही वक्त में कई एक तस्वीरें बना जाता हो? यकीनन रंगों को भरने में कोई भी कोताही नहीं की है उसने लेकिन इन सब का मेरे लिये मायने ही क्या? मेरा मलाल तो कोई और ही है . . .

बेदाद-ए-इश्क़[15] से नहीं डरता मगर 'असद'
जिस दिल पे नाज़ था मुझे वह दिल नहीं रहा

आपके इस तरह चले जाने से मेरे जज़्बात कहीं गुम होकर रह गये हैं और जब मेरे पास वे जज़्बात[16] ही नहीं रह गये, तो मेरे पास बचा भी क्या? यह तो सांसों की एक मुर्दा रवानगी भर रह गयी है।

बहुत गुरूर था हमें कि हम यूं करेंगे, ऐसा करके दिखा देंगे, अपनी वफ़ा का इम्तहान दे देंगे लेकिन कहां खोने लग गये हैं अभी से हमारे सब हौसले? क्यों पथराने लग गयी है हमारी आंखें? क्यों सूखने लग गये हैं हमारे होंठ? कहां कमज़ोर पड़ रहे हैं हम? क्या गुस्ताख़ी हो गयी है हमसे? किससे जाकर पूछें हम . . .

और ही रंग है 'फ़िराक़' अब तो शऊरे इश्क़[17] का
अब न वो ख़ुशगुमानियां[18] अब न वो बदगुमानियां[19]

अब तो हमारे पास फ़कत आपके लिये कुछ इशारे भर ही रह गये हैं मगर उन इशारों की तफ़सील[20] बयां करने वाला भी तो कोई हो . . .

आपकी एक-एक अदा बेपनाह याद आती है, आपका वह चलना, आपका वह रुकना, आपका वह कुछ कहना और कहते-कहते आधी बात को बीच में छोड़कर मुस्करा देना और उस मुस्कुराहट में बिना कुछ कहे भी सब कुछ कह देना – सब कुछ ज़ेहन[21] में ज्यों का त्यों बना हुआ है मगर जो कशिश है वह तो इन बातों से नहीं मिट सकती।

अब क्या कहूं और क्या न कहूं कुछ समझ में नहीं आता। मैं आपका मकसद[22] नहीं समझ पा रहा हूं कि क्यों आप हमें छोड़कर रुख़सत[23] हो लिये और . . .

यह जो मुहलत[24] सी जिसे कहें हैं उम्र
देखो तो इन्तिज़ार सा रहता है कुछ

---

१. मित्रों, २. सदा प्रसन्न रहने वाला, ३. अत्यधिक प्रिय, ४. व्यक्तित्व, ५. कारण, ६. गुप्त, ७. बादल, ८. ब्रह्माण्ड, ९. चौखट, १०. प्रतिबिम्ब, ११. आत्मलीनता, १२. सभा, १३. अस्तित्व, १४. चित्रकार, १५. प्रेम के कष्टों, १६. भावनाएं, १७. प्रेम के ढंग, १८. आशायें, १९. भ्रम, २०. विस्तार, २१. मस्तिष्क, २२. अर्थ, २३. विदा, २४. अवकाश
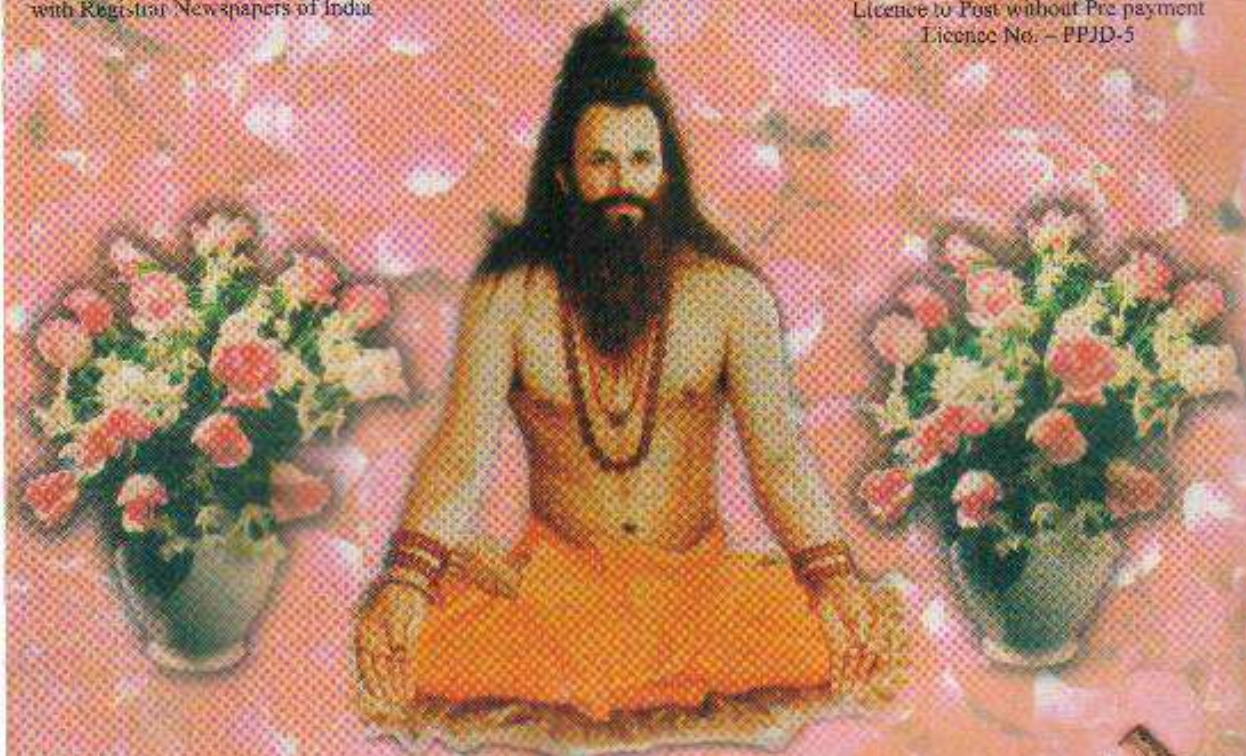
रजिस्ट्रेशन नं० 35306/81
with Registrar Newspapers of India
AHW
पोस्टल नं० RJ/WR/19/65/2000
Licence to Post without Pre payment
Licence No. – PPJD-5
गुरु जन्म दिवस कोई गुरु का जन्म दिवस नहीं होता, क्योंकि गुरु अपने आप में अ... सत्ता होता ही नहीं। गुरु तो बिखर कर पूरे शिष्यों के बीच समाहित हो जाता है और फिर जो पूरे शिष्यों का समूह होता है, वह अपने आप में गुरु कहलाता है। मेरा रूप जो आपके बीच बिखर गया है, वह मेरा सारा ज्ञान, मेरे जीवन के ये क्षण, मेरे रोम-रोम, मेरे विचार, मेरी धारणायें, मेरा चिन्तन और आपके हृदय पटल पर अंकित गुरु की छवि — यह सब कुछ जो मिलकर है, वह अपने आप में गुरु है। और इस तरह यह सब नहीं, तुम्हारा जन्म दिवस है, गुरु जन्म दिवस नहीं शिष्य जन्म दिवस है।
— परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी
माह : मई में दीक्षा के लिए निर्धारित विशेष दिवस
पूज्य गुरुदेव निम्न निर्दिष्ट दिवसों पर साधकों से मिलेंगे व दीक्षा प्रदान करेंगे। इच्छुक साधक निर्धारित दिवसों पर पहुंच कर दीक्षा प्राप्त कर सकते हैं। निर्धारित दिवसों पर ये दीक्षाएं प्रातः 11 बजे से 1 बजे के मध्य तथा सायं 7 बजे से 9 बजे के मध्य प्रदान की जायेंगी।
दिनांक 5-6-7 मई 2000 स्थान गुरुधाम (जोधपुर)
दिनांक 24-25-26 मई 2000 स्थान सिद्धाश्रम (दिल्ली)
वर्ष – 20
अंक – 4
: सम्पर्क :
मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान, डॉ० श्रीमाली मार्ग, हाईकोर्ट कॉलोनी, जोधपुर-342001 (राज०), फोन: 0291-432209, टेली फैक्स : 0291-432010
सिद्धाश्रम, 306, कोहाट एन्क्लेव, पीतमपुरा, नई दिल्ली-34, फोन : 011-7182248, टेली फैक्स : 011-7196700